॥ ओ३म् ॥

नवीन और प्राचीन समाजवाद

लेखक :

पूज्यपाद महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज

*

नया संस्करण]

[मूल्य १)६० पसे

भूमिका

दुनिया जब से बनी है तभी से अमीरी और गरीबी दोनों साथ-साथ जुड़वां भाइयों की तरह चली आती हैं। यत्न बराबर यह होता रहा कि उनमें मेल रहे और वे वास्तव में भाई-भाई की तरह से रह सकें और चिरकाल तक वे इस प्रकार रहे भी, परन्तु अब दो हजार वर्ष से* वे भाई-भाई की तरह से नहीं अपितु विरोधियों की तरह से दो कैम्पों में विभक्त हो गये हैं और उनका यह विरोध, ज्वार भाटा की तरह, न्यूनाधिक तो होता रहता है परन्तु जाता नहीं। इसका कारण और एक-मात्र कारण दोनों का स्वार्थसंघर्षण है। अमीर तो यह चाहते हैं कि बिना हाथ-पांव हिलाये गरीबों के परिश्रम का लाभ उठाकर अमीर बने रहें और गरीब इसके विपरीत यह चाहते हैं कि बिना या नाममात्र परिश्रम से, अमीरों का धन हड़प करते रहें। जब तक इनमें यह स्वार्थ पनपने नहीं पाया था तब तक ये मेल से रहे, उनमें किसी प्रकार का मनमुटाव नहीं होने पाया, उसकी चर्चा हम आगे के पृष्ठों में वर्ण और आश्रम का उल्लेख करते हुए करेंगे। इन वर्ण और आश्रमों का सम्बन्ध, इस देश के आदिम वासी प्राचीन आर्यों की संस्कृति और सभ्यता से है। उस आश्रममर्यादा का लोप होने से, पश्चिमी देशों में विशेषता के साथ अमीरों और गरीबों का

---

*कैपिटल नामक ग्रन्थ में कार्लमार्क्स ने भी इस अवधि को स्वीकार करते हुए प्रकट किया है कि वर्तमान पूंजी और श्रम का झगड़ा इसी काल की उपज है।

संघर्षण शुरू हो गया और अब तक चल रहा है। पश्चिमी देशोंमें अधिकता के साथ इस झगड़े के आरम्भ होने का कारण, पूर्वी और पश्चिमी सभ्यता के अन्तर में निहित है। पूर्वी सभ्यता का आदर्श त्याग, परन्तु पश्चिमी सभ्यता का आदर्श भोग है। समाज का आदर्श देखकर असंख्यों आदमी मिलकर शान्तिमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं परन्तु भोग अथवा स्वार्थ को लक्ष्य बनाकर दो आदमी भी मिलकर नहीं रह सकते। यही कारण है कि योरुप में अशान्ति का वातावरण सदैव प्रवाहित रहता है। एक लड़ाई खतम नहीं होने पाती कि दूसरी का सूत्र पात हो जाता है। पिछले २०० वर्षों में योरुप में इस लड़ाई-झगड़े के कारण कितने प्राणी नष्ट हुए इसका कुछ अनुमान नीचे दी हुई तालिका से हो सकेगा:—

सं०	युद्ध का नाम	मरे या घायल हुए	लड़ाई से उत्पन्न विशेष रोग से मरे
१.	सप्तवर्षीय युद्ध (१७६५-७२)	१२५४०० (आस्ट्रीयन) १८०००० (पुरुशियन्स)	४००००
२.	नैपोलियन युद्ध (१७९३-१८१५)	४५८५३	२६५९५३ रूस के सिवा अन्य युद्धों में
३.	,, १८१२ ई०	५६५०००	२५०० रूस के युद्ध में।
४.	रूस और तुर्की युद्ध (१८२८)	१७५२६	रूस की बाकी समस्त सेना रोग से मर गई
५.	क्रीमिया युद्ध अंगरेज	४६०२	१७५८०
	फ्रेंच	२०२४०	१५३७५
	आस्टरिया	४२५२	३५०००

६. अमेरीकन सिविलवार उत्तरीय रियासतें ११०००० २२८५८६
(१८६१-६५) दक्षिणी राज्य १२००००

७. रूस टरकी युद्ध
(१८७७) रूस ३००००
टरकी ३५००००

८ बूअरों और अंगरेजों अंगरेज ७५३५
का युद्ध बूअर ५२००

९ यूरुप का महा युद्ध रूस १७०००००
(१९१४-१९१८) जरमनी २००००००
फ्रांस १६०००००
बृटिश ९५०००००
आस्टीरिया १५०००००
इटली ४००००००
टरकी ३५००००
अमरीका १०००००

इस महायुद्ध के बाद १९१८ ई० में एन्फलुऐन्जा से मरे थे। पश्चिम क्यों इतनी अ बना हुआ है इसका कारण एक तो वही वि और स्वार्थपूर्ण सभ्यता है जिसका ऊपर उल्ले कारण इसी सभ्यता की सन्तति योरुप का नेश भी नैशनलइज्म को मानते हैं परन्तु हम नैशनलइज्म में भीतरी अन्तर है। पश्चिमी ज नलइज्म उनका उद्देश्य है, यदि ये नैशनलिस्ट... ... ... उन्होंने अपने अन्तिम ध्येय को प्राप्त कर लिया परन्तु हमारा नैशनलइज्म विश्वभावनामय जीवन बनाने का साधनमात्र है।

नैशनलइज्म ने पश्चिम में जन्म की अनेक जातियां पैदा कर दी हैं। अंगरेज, फ्रेंच, रूस, जरमन आदि सभी जन्म की जातियां हैं और एक दूसरे से ईर्ष्या द्वेष रखती हैं और प्रत्येक अपने आप स्वार्थसिद्धि के यत्न में व्यस्त हैं। वर्तमान १९३९ ई० से शुरू हुआ युद्ध भी इसी संकुचित देश सीमित जातीयवाद (Nationalism) का परिणाम है।

पश्चिमी देशों में इस ध्येय को बदलते हुए, अनेक यत्न गरीबों और अमीरों में शान्ति स्थापना के लिये हुये और हो रहे हैं परन्तु वे पूर्णतया सफलीभूत क्यों नहीं हुये या होते ? इस का एक मात्र कारण यही है कि वे देश अपनी विश्वभावना-शून्य सभ्यता को नहीं बदलना चाहते।

(२) इन्हीं संघर्षणों में, वर्तमान साम्यवाद का जन्म हुआ। लिओं फ्रांस में लांज (Lange) ने फूरियवाद को जन्म दिया और बाबफ (Babuf) और उसी के सहयोग में काम करने वालों ने मिलकर सत्तावादी साम्यवाद को प्रचलित किया। इस बीच में फ्रांस की क्रान्ति हुई और राज्य उथल-पुथल हुआ। इस क्रान्ति के बाद फरियर (Faurier), सैण्ट सायमन और राबर्ट ओवेन और गाडविन ऐसे व्यक्ति हुए जिन्होंने योरुप में आधुनिक समाजवाद के सिद्धान्तों के फैलाने का साहसपूर्वक यत्न किया और इन्हीं के अनुयायियों ने साम्यवाद को निश्चित रूप दिया। इंगलैंड में इन्हीं रूपों के अनुसार ग्राम बसाने का यत्न किया गया परन्तु सफलता नहीं हुई। इन्हीं संघर्षणों ने इंगलैंड के मजदूरदल को जन्म दिया।

फ्रास में फरियर के अनुयायी कांसी दैंग (Considerant)

ने, पूंजीवाद के विरुद्ध विज्ञप्ति प्रकाशित की, जिसे वर्तमान समाजवाद के सिद्धान्तों का पूर्व रूप कहना चाहिये। जोजेफ प्राउडहुन (J. Proudhon) ने जो कल्पनाये अराजकवाद और अन्योन्याश्रय वाद के सम्बन्ध में की थी उनका व्याख्यान किया।

लुईब्लांक ने मजदूर सगठन की योजना प्रकाशित की। बीदाल और मेकर ने अपने कल्पित समष्टिवाद का विवरण प्रकाशित किया और यत्न किया कि उसके अनुसार विधान स्वीकार हो जावे परन्तु उसमें सफलता नहीं प्राप्त हुई।

फ्रांस में १८४८ ई० की क्रान्ति के बाद प्रजातन्त्रशासन की बुनियाद पड़ी परन्तु इस शासन की घोषणा के बाद मजदूरों ने संगठित विद्रोह किया परन्तु वह विद्रोह भी असफल हुआ। इस विद्रोह को कुचल देने के लिये शासनाधिकारियों ने बड़ी निर्दयता से सहस्रों मजदूरों का वध कराया और बहुत से देश से निकाल भी दिये गये। इसी बीच में नैपोलियन का एक सम्बन्धी छोटा नैपोलियन फ्रांस का राजा बन बैठा और उसके निष्ठुर राज्य काल में फ्रांस से समाजवाद और वर्गवाद का नाम निशान तक मिटा दिया गया। दूसरी ओर इंगलैंड में जब पैरिस के मजदूरों और ओवेन के अनुयायियों तथा इंगलैंड के ट्रेडयूनियन वालों का एक महान् सम्मेलन हुआ तो उसमें पर्याप्त वादानुवाद के बाद प्रायः सभी को, एक मत होकर स्वीकार करना पड़ा कि मजदूरों को अपना उद्धार आप करना होगा। पूंजीपतियों की सहायता की आशा नहीं करनी चाहिये, और इस प्रकार इन सभी श्रेणियों के श्रमजीवियों ने मिलकर एक महान् अन्तर्जातीय संघ बना लिया। परन्तु १८७०-७१ के जर्मन फ्रांस युद्ध के कारण फ्रांस में समाजवाद की उन्नति फिर रुक गई परन्तु जर्मन देश में कार्लमार्क्स और ऐंजिल के

द्वारा उपर्युक्त इंगलैंड और फ्रांस के साम्यवाद के सिद्धान्तों के प्रचार से फ्रांस के साम्यवादियों के सिद्धान्त दब नहीं सके और उनका एक न एक रूप से कभी इधर कभी उधर प्रचार होता ही रहा। कार्लमार्क्स के द्वारा न केवल इन सिद्धान्तों का प्रचार हुआ अपितु उसने इन सिद्धांतों के साथ अपने कुछ और मतों को शामिल करके समाजवाद को वैज्ञानिक रूप दिया और यही वैज्ञानिक समाजवाद इस ग्रन्थ का आलोच्य विषय है। कार्ल-मार्क्स के सिद्धान्तों में जो परिवर्तन लेनिन ने और लेनिन के मतों में जो परिवर्तन स्टेलिन ने किये उनका भी दिग्दर्शन, पाठक, इस ग्रन्थ में कर सकेंगे। इनका वर्णन करने से पहले ग्रन्थ में कुछ उन आंदोलनों का भी जिक्र कर दिया गया है जो इंगलैंड और फ्रांस में हुये थे और जिन्हें मार्क्सवाद का पूर्व रूप समझा जाता है जिससे यह बात भलीभांति समझी जा सके कि मार्क्सवाद का जन्म किस प्रकार हुआ था।

(२) ग्रन्थ के तय्यार करने में, आवश्यक था कि अन्य ग्रन्थों की सहायता ली जाती तदनुसार सहायता, ली गई है। जिन ग्रन्थों से सहायता ली गई है उनकी एक सूची, इससे पहले पृष्ठों में लगा दी गई है। मैं इन ग्रन्थकर्ताओं का आभारी हूँ। उनके लिखे ग्रन्थों की सहायता के बिना इस ग्रन्थ का तय्यार होना सम्भव नहीं था। इन थोड़े से शब्दों के साथ यह ग्रन्थ स्वाध्याय शील जनता के सम्मुख उपस्थित किया जाता है।

रामगढ़
३१-५-१९४५

— नारायण स्वामी

इस ग्रन्थ के तय्यार करने में निम्न पुस्तकों से सहायता ली गई है।—

(१) ऋक, यजु और अथर्ववेद

(२) मनुस्मृति

(३ नारदस्मृति

(४) बृहदारण्यकोपनिषद

(5) Men and Politics by Louis Fischer.

(6) Stalins Russia and the Crisis in Socialism by Max Eastman.

(7) Assignment in Utopia by Engene Lyons

(8) The dream we lost by Freda Utby.

(9) Return from the U. S S. R. and after thoughts on the U. S. S R.

(10) Capitalism by Carl Marx Vol I and II.

(11) The History of Socialism by Sally Graves.

(12) Socialism reconsidered by M R Masani.

(13) Darkness at noon by Arthur Korstler.

(14) Mission to Moscow by Joseph L. Davies.

(18) The Managerial Revolution by James Brunham.

(16) Twelve Studies in Russia

(17) Humanity uprooted by M. Hindus.

(18) Study of a brave new world by T. Huxley.

(19) Dream book by Ar. Philip Ravan.

(20) The shape of things to come by H. G. Wells.

(21) History of the future by J. L. Deveis.

(22) Modern business by N. V. Hope

(23) What is Socialism by Dan Griffiths.

(24) Survey of Modern Socialism by F. G. C. Hearn Shaw.

(25) Lenin by V. Maren.

(26) The way to prevent war by Sir Normat Angal and Prof. H Laski.

(27) Hindu Society by K. P Jayaswal.

(28) Fascism by Major Burnes.

(29) Unto the last by John Ruskin.

(30) The psychology of character by D. A A. Roback

(31) A Scientist among the Soviets by T. Huxley.

(32) Guide through world chaos by G. D H. Cob.

(33) The Guild States by G. R. S. Taylor.

(34) Labour defended against the claims of Capital by Thomas Hodgskin.

(35) A Pamphlet on the nature of property by P. J. Proudhon.

(36) *Critique of political Economy by Carl Marx.*

(37) The condition of working classes in England by Angal.

(38) Roman Empire by Gibbon.

(39) Political Science by Leacdok.

(40) Political Science by Gellal.

(41) Road to freedom by Bertrand Russell.

(42) Ancient V modern Scientific Socialism by Dr. Bhagwan Das.

(43) The Essential unity of all religions by Dr. Bhagwan Das.

(44) World Panorama by George Saldes.

(45) Local Government in ancient India by Radha Kumud Mukerji by Sir George Birdwood.

(46) The literary History of India by Frazer.

(47) Europe to-day by Cob.

(19) Dream book by Ar. Philip Ravan.

(20) The shape of things to come by H. G. Wells.

(21) History of the future by J. L. Deveis.

(22) Modern business by N. V. Hope

(23) What is Socialism by Dan Griffiths.

(24) Survey of Modern Socialism by F. G. C. Hearn Shaw.

(25) Lenin by V. Maren.

(26) The way to prevent war by Sir Normat Angal and Prof. H Laski.

(27) Hindu Society by K. P Jayaswal.

(28) Fascism by Major Burnes.

(29) Unto the la‹t by John Ruskin.

(30) The psychology of character by D. A A. Roback.

(31) A Scientist among the Soviets by T. Hux'ey.

(32) Guide through world chaos by G. D H. Cob.

(33) The Guild States by G. R. S. Taylor.

(34) Labour defended against the claims of Capital by Thomas Hodgskin.

(35) A Pamphlet on the nature of property by P. J. Proudhon.

(36) Critique of political Economy by Carl Marx.

(37) The condition of working classes in England by Angal.

(38) Roman Empire by Gibbon.

(39) Political Science by Leacdok.

(40) Political Science by Gellal.

(41) Road to freedom by Bertrand Russell.

(42) Ancient V modern Scientific Socialism by Dr. Bhagwan Das.

(43) The Essen:ial unity of all religions by Dr. Bhagwan Das.

(44) World Panorama by George Saldes.

(45) Local Government in ancient India by Radha Kumud Mukerji by Sir George Birdwood.

(46) The literary History of India by Frazer.

(47) Europe to-day by Cob.

विषय-सूची

पहला अध्याय

दूसरा अध्याय

इंगलैण्ड

तीसरा अध्याय

फ्रांस

चौथा अध्याय

कार्लमार्क्स

पांचवां अध्याय

मार्क्सवाद पर विचार

छठा ग्रध्याय

राज्य का ग्रधिकार

सातवां ग्रध्याय

ग्राठवां ग्रध्याय

नवां ग्रध्याय

दसवां अध्याय

ग्यारहवां अध्याय

बारहवां अध्याय

तेरहवां अध्याय

चौदहवां अध्याय

पन्द्रहवां अध्याय

सोलहवां अध्याय

नवीन और प्राचीन समाजवाद

पहला अध्याय

रोमन जाति

यौरुप का इतिहास प्रकट करता है कि एक रोमन जाति प्राय: समस्त यौरुप और एशिया के पश्चिमी भाग की मालिक थी, उसका कारण यह था कि वे जहां शासन करते थे वहां शासनान्तर्गत जातियों को, शिक्षित सभ्य और मनुष्योचित व्यवहार कर सकने की योग्यता वाला बनाने का यत्न किया करते थे। उन्होंने अपने शासन काल ही में इंग्लैंड निवासियों को सभ्य और इस योग्य बनाया कि वे स्वयं अपने देश का शासन कर सकें। इग्लैण्ड निवासियों ने अपने को रोमन जाति का अच्छा शिष्य सिद्ध नहीं किया अन्यथा २०० वर्ष के शासनकाल में भारतवर्ष में शिक्षा का औसत ६ फीसदी न होता और न देश में दरिद्रता का साम्राज्य छाया हुआ रहता। रोमन्स का इतना विशाल साम्राज्य क्यों नष्ट हो गया और आज उनका कोई नाम लेवा भी बाकी नहीं रहा ? इसका कारण यह है कि उसके अन्तिम शासक शासकों के गुणों से रहित हो गये। उन दिनों में रोमन जाति दो भागों में विभक्त हो गई थी एक धनी और कुलीन (Patrician) और दूसरे साधारण पुरुष (Plebeian) कहे जाते थे। अमीरों की अमीरी बढ़ी और साधारण पुरुष

दरिद्रता के शिकार हुये। इस का फल यह हुआ कि धनी तो स्वामी और साधारण व्यक्ति दास बन गये। धनियों ने धन के नशे से चूर होकर दासों पर अत्याचार करने प्रारम्भ किये। उन अत्याचारों में से कुछ एक का विवरण दिया जाता है:—

(१) ये दास सरकस के ढंग पर शेरों से लड़ाये जाते थे और जब शेर उन्हें मार लेता था तो इससे उन धनियों का बड़ा मनोरंजन होता था।

(२) ऐसे आईन वहां (रोम में) बना दिये गये थे जिससे धनी लोग जब शिकार से लौटें तो कुछ एक दासों को मारकर उनके रक्त से अपने पांव धो सकें। इसी प्रथा का संकेत करते हुये, कारलाइल ने एक बार व्यंग से कहा था कि अब वे कानून प्रचलित नही रहे जिनके रू से कोई जिमीदार शिकार से आकर दो दासों का बध करके उनके खून से पांव धोया करता था।

(३) "शारलुमर" छत पर काम करते हुये राज को गोली मार कर, उसके गिरने में अपना मनोरंजन समझा करता था।

(४) "नीरो" ने केवल तमाशा देखने के लिये रोम नगर के उस भाग में जिसमें गरीब रहा करते थे, आग लगवा दी थी।

(५) 'कैली गुला" ने अपने घोड़े को अपना मन्त्री(Consul) बनाया था। इत्यादि २ मूर्खताओं और अत्याचारों के फलस्वरूप रोमन साम्राज्य तो नष्ट हुआ ही परन्तु उसका एक भयानक परिणाम यह निकला कि धनी और निर्धनोंमें शत्रुता बढ़ने लगी और निर्धनों ने, अमीरों के इन अत्याचारों से बचने के लिये अपनी आबादी पृथक् करनी शुरू की।

भ्रातृसंघ

ईसा के जन्म से कुछ पहले एलेकजेन्ड्रिया, जेरोशलीम आदि स्थानों में मजदूर लोगों ने अपने संघ बनाने शुरू किये। इन संघों में राज, मजदूर, बढ़ई, लुहार आदि श्रमजीवी स्त्री पुरुष सभी मिलकर रहा करते थे। सबका भोजन एक जगह बनता था, सब जो कमा के लाते थे वह एक सम्मिलित कोष में जमा हो जाता था, वस्त्र सब एक तरह के पहनते थे। काम अपना-अपना पृथक् २ यथा स्थान करने चले जाया करते थे। इन संघों में जो नवीन व्यक्ति प्रविष्ट होते थे वे नव शिष्य (Novice) कहलाते थे और जो इस संघ का मुखिया होता था उसे 'इसीर' (Esseer) कहा जाता था। ईसा के लिये कहा है कि वह जेरोशलीम के इसी प्रकार के एक संघ का एकसदस्य था। सूली लगने से उसकी मृत्यु नहीं हुई थी। सूली के बाद जोजफ, जो रोमन गवर्नर की कोन्सिल का एक सदस्य था, उस समय की प्रथानुसार सूली के बाद ईसा की लाश को, उसे मरा प्रकट करके गवर्नर से मांग लाया था। 'निकोडेमिस' की चिकित्सा से वह अच्छा हो गया और अपने संघ ही में रहा। इसके ६ मास के बाद उसकी असली मृत्यु हुई और वह एक जगह समुद्र के किनारे दफन किया गया।

इस संघ वाले प्राय: अहिंसा नियमों पर चलते थे, इसलिये उस समय के धनी पुरुषों पर इन संघोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ा

१—ईसा की सूली आदि का सविस्तर हाल जानने के लिये Crucifixion by an eye witness नामक ग्रन्थ को देखना चाहिये जिसे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली ने प्रकाशित किया है।

और उनके अत्याचार निर्धनों पर यथापूर्व जारी रहे। तब निर्धनों ने कार्य प्रति कार्य के नियमानुसार हिंसा का आश्रय लिया। यौरुप में अनारकी फैलने का यहीं से प्रारम्भ होता है। इस अराजकता (Anarchy) से वहां कितना रक्तपात हुआ इस का साक्षी वहां के मध्यकालीन युग का इतिहास है।

फ्रांस देश

फ्रांस में हुई क्रान्ति के पहले, वहां के एक व्यक्ति "रूसो" ने एक प्रकार के समाजवाद का प्रचार किया था जिसे हम वर्तमान समाजवाद का आदि रूप कह सकते हैं। उसने अपने एक ग्रन्थ द्वारा अपने समाजवाद के सिद्धांत इस प्रकार प्रकट किये थे:—

(१) पृथिवी और सम्पत्ति पर सबका बराबर अधिकार होना चाहिये।

(२) बलवानों ने निर्बलों का धन छीन कर उसको स्थायी बनाने का जो यत्न किया है उसी को कानून कहते हैं।

(३) जिसने भूमि के किसी अंश को अपनी निजी सम्पत्ति होने की घोषणा की वह ठग था।

फ्रांस की क्रान्ति का कारण रूसो का यही ग्रन्थ (Le Contral Social) समझा जाता है जिसमें सोलहवां लुई वहां की गद्दी से उतारा गया और प्राण दण्डित हुआ। "वालटेयर" प्रसिद्ध फ्रेंच लेखक ने रूसो के इस ग्रन्थ को बदमाशों का दर्शन कहा था। अस्तु। इस प्रकार फ्रांस देश में समाजवाद का सूत्रपात हुआ। इसके वाद समाजवाद में उतार-चढ़ाव होते रहे। कभी २ शृंखला टूट भी गई। आगे के अध्यायों में, क्रम-पूर्वक, समाजवाद का जहां से प्रारम्भ होता हैं संक्षेपतः उल्लेख किया जायेगा।

दूसरा अध्याय
इंग्लैंड

(१) प्रारम्भ

फ्रांस की क्रांति हो चुकने पर इंग्लैण्ड में असन्तोष हुआ। असन्तोष का मुख्य कारण यह हुआ कि घरेलू व्यवसायों के स्थान में यान्त्रिक व्यवसाय शुरू हुआ जिससे श्रम जीवियों में बेकारी भी भारी मात्रा में बढ़ गई,यद्यपि इन नवीन कारखानों में कुछ एक मजदूरों की खपत हुई परन्तु उससे उस बेकारी में कमी नहीं हुई। तब मिल मालिकों ने सोचा कि मजदूरों की कुछ सहायता की जावे परन्तु वह सहायता नहीं थी अपितु उनके स्वार्थकी पूर्ति का एक साधन था। उनकी स्कीम यह थी कि कारखाना खोलने में जो इमारत खड़ी करनी पड़ती है तथा मशीनों में जो खर्चा होताहै उसकी पूर्ति कारखाने की पैदावार बढ़ाकर की जावे और उसके बढ़ाने के लिये मजदूरों के काम के घण्टे बढ़ाये जावें और मजदूरों की नाममात्र की कुछ मजदूरी भी बढ़ा दी जावे परन्तु इससे कुछ बात बनी नहीं और असन्तोष बढ़ता ही रहा।

(२) इन कारखानों का अन्धेरा पहलू

इन मशीनों के कारण जो खराबियां उत्पन्न हुई उसने असन्तोष को और बढ़ाया। उनका अन्धेरा पहलू यह था (१) बालश्रम जारी हो गया (२) काम सिखाने (Apprentice system) का एक विभाग खोला गया, (३) आरोग्यविघातक

Insanitary condition) अवस्था बढ़ी, (४) नई मशीनों के खड़ी करने में मृत्यु का खतरा भी बढ़ा।

(३) निग्रहकारी कार्य

इंग्लैण्ड के धनी फ्रांस की क्रांति का विवरण सुनकर भयभीत रहते थे, इससे वास्तविक सुधार करने का भी उन्हें कभी स्वप्न आता रहता था परन्तु उनका डर, *पिट के निग्रहकारी* आईनों (Repressive laws) की सफलता से कम हो गया। परन्तु मजदूरों की हड़ताल होती रही। निग्रह कारी आईनये थे:—(१) मजिस्ट्रेटों को संक्षेपत: निर्णय (Summary powers) करने के अधिकार दिये गये (२) ड्रिल करना निषिद्ध ठहराया गया (३) नास्तिकता (Blasphemy) और विद्रोह करने के आईन कड़े किये गये,(४) तलाशी लेने और सम्पत्ति जब्त करने के अधिकार मजिस्ट्रेटों को दिये गये। (५) साधारण सभाओं के संगठित करने के अधिकार कम किये गये।(६) समय-समय पर निकाले जाने वाले पैम्फिलटों पर,समाचार पत्रों जैसे भारी टैक्स लगाये गये।

"पुलिस सरकार" के आईनों से असन्तोष दूर नहीं हुआ अपितु इनके जारी होने पर जनता ने मन्त्री मण्डल के सदस्यों के वध करने का षड़यन्त्र रचा। एक मीटिंग में जिसमें प्रभावशाली वक्ता हंट (Hunt) भाषण देने वाला था मजदूर दल के ८० हजार व्यक्ति सम्मिलित हुये। मशीन के काम करने वाले (Luddites) भी कारखानों को छोड़ कर राजनैतिक सुधारों के आन्दोलन करने में लग गये। हंट ने यद्यपि बन्दी बनाने के लिये अपने को पेश किया था परन्तु पुलिस ने उसे न पकड़ कर

जनता को अपराधी ठहराया। फायर करने से ११ व्यक्ति मरे और बहुत से घायल हुये। पुलिस का यह कार्य "पेटरलू बध" (Peterloo massacre) के नाम से प्रसिद्ध है। इस घटना से और भी लोग राज्य के विरुद्ध होकर सुधार इच्छुकों के केम्प में चले गये। ओवन (owen) ने मशीनों पर विचार करते हुये प्रकट किया कि मशीनों से जो अधिकता के साथ माल पैदा होता है इसमें दोष नहीं, दोष केवल उनके विभाजन में है। उसने निजी सम्पत्ति, विवाह प्रथा, सामयिक सम्प्रदायों के सम्बन्ध में अनेक सुधार कराने चाहे परन्तु असफल होते हुये उसने जान लिया कि पूंजीपति नहीं चाहते कि देश के आर्थिक ढांचे में किसी प्रकार का परिवर्तन हो। जनता चाहती थी कि राजनैतिक सुधारों के साथ, समानान्तर रेखा की तरह, आर्थिक सुधार भी हों परन्तु पूंजीपति इसके विरुद्ध थे। जनता का दृष्टिकोण कुछ उसी प्रकार का था जैसा मार्क्स ने पीछे से प्रकट किया।

(४) अतिरिक्त भाग मूल्यवाद

कार्लमार्क्स का अतिरिक्तभागमूल्यवाद (Theory of Surplus value) गरीबों के लूटने का नाम है। मार्क्स चाहता था कि जिन साधनों से धनी मजदूरों के परिश्रम से उत्पन्न माल को जितना मजदूरी देने के बाद बच रहता है, हड़प कर लेते हैं उनको दूर कर दिया जावे। उनके दूर करने ही के साधनों का नाम अतिरिक्तभागमूल्यवाद है। इंग्लैण्ड के आंदोलनों में एक आन्दोलक व्यक्ति थामस हाजकिन (Thomas Hodgskin) था। यह एक जहाजी विश्रान्त कर्मचारी था। इस ने जो सुधार चाहे थे, वे मार्क्स के इस वाद के पूर्व रूप ही थे।[1]

(५) समाजवाद

इसी प्रकार समाजवाद वाचक अंग्रेजी शब्द (Socialism) सबसे पहले ओवन के अनुयायियों के एक पत्र में प्रयुक्त हुआ था। यह पत्र समाजोद्धार के लिये आन्दोलन करता था, पार्लियामेंट का सुधार भी इसके काम का एक अंग था। इसके बाद इस शब्द का फ्रेंच लेखक रिबेंड (Reybund) ने अपने लेखों में अधिकता के साथ प्रयोग किया था।[२]

(६) सुधार संघर्ष

श्रमजीवियों के विभिन्न सघों ने मिल कर स्वतन्त्रता के साथ अपने संगठन को दृढ़ किया और लन्दन के मिल मजदूरों के संघ के साथ होकर उन्होने एक आन्दोलन, सार्वलौकिक सम्मति के अधिकारों की प्राप्ति का किया। इसी प्रकार के संघ, इसी उद्देश्य के साथ जगह-जगह बन गये। १८३७ ई० में एक वृहदधिवेशन में, जिसमें प्रसिद्ध सुधारक "फरगस, ओ, कनौर" (Furgns, O, Cannor) भी मौजूद था, यह निश्चय हो गया कि पार्लियामेंट को एक प्रार्थना पत्र निम्न सुधारों के लिये दिया जावे:—

[१] सार्वलौकिक सम्मत्यधिकार प्राप्ति।

[२] वार्षिक पार्लियामेन्ट।

१—हाजकिन ने अपने सुधारों का सविस्तर वर्णन अपने ग्रन्थ "Labour. defended against the claim of Capital" में दिया है।

2—A history of socialism by Groves P. 25.

[३] गुप्त सम्मति पत्र (Secret Ballot)

[४] बराबर-बराबर निर्वाचकों के जिलों का निर्माण।

[५] पार्लियामेंन्ट के उम्मीदवारों के लिये जायदाद रखने की शर्त का दूरीकरण तथा मेम्बरी का टैक्स।

यह प्रार्थना पत्र रैडिकल प्रेस से प्रकाशित हुआ और इसका नाम "सर्व साधारण का अधिकार पत्र" (Peoples Charter) रखा गया। यह प्रार्थना पत्र पालियामैंट में उपस्थित हुआ ओवन के अनुयायी भी इसकी पुष्टि में लग गये। लार्ड रसल ने, गवर्नमेंट की ओर से जब इस प्रार्थना पत्र को अस्वीकार करते हुये, यह उत्तर दिया कि निर्वाचकों के सम्बन्ध में जितना सुधार हो गया है, वह सदा के लिये है अब उससे अधिक आशा नहीं करनी चाहिये, यह चार्टर आन्दोलन इस उत्तर के बाद क्रान्ति की ओर चला गया। और इस प्रार्थना पत्र के स्वीकारी के इच्छुकों ने घोषणा की कि "यदि सरकार हमें पिटरलू का मार्ग दिखायेगी तो हम उन्हें मासकू बनाके छोड़ेंगे"।[1] ये शब्द थे जो प्रत्येक मजदूर की जुबान से निकलने लगे। अस्तु जब इस यत्न से मजदूरों को असफलता हुई तब उन्होने अच्छे दृढ़ व्यापारिक संघ (Trade Unions) बनाने शुरू किये और सहकारिता के नियम से चलने वाले कारखानों के बनाने की ओर ध्यान देना शुरू किया।

इस चार्टर के उद्योग और पार्लियामेंट के सुधारके आंदोलन

1—अंग्रेजी के शब्द ये हैं:—If they (govt) Peterloo us, we will mascow them (A history of socialism by sally Groves P. 26)

(७) कार्लमार्क्स की शिक्षा

में,जिसे हंट और कोविट ने ओवन के समाजवाद के दृष्टिकोण से जारी कर रक्खा था समस्त समाजवाद के सुधारों का पूर्वरूप निहित था। कार्लमार्क्स और उसके साथी एँगिल्स (Engels) ने इन सब पर विचार करते हुए अनुभव किया कि उनके इच्छित सुधारों के लिए यह यत्न अत्यन्त सहायक होगा और इसीलिए उन्होंने बड़ी सावधानी के साथ इन समस्त प्रयत्नों का अध्ययन किया।[1]

1—A history of socialism by Sally Groves P. 32-33.

तीसरा अध्याय

फ्रांस (१७८९–१८७१)

(१) प्रारम्भ

फ्रांस की क्रांति जिसका पहले उल्लेख हो चुका है यद्यपि समाजवाद के नियमानुसार नहीं थी परन्तु निश्चित रीति से यह कहा जा सकता है कि इससे इस वाद को पुष्टि मिली। फ्रांस की क्रान्ति का आधार सम्पत्ति रक्षा था परन्तु अन्त में वह सम्पत्ति से सम्बन्धित मौलिक सिद्धान्त (Fundamental tenet) के रूप में परिवर्तित हो गई। उस समय स्थिति ऐसी पैदा हो गई थी कि सम्पत्ति शीघ्र से शीघ्र एक से दूसरे के हाथ में जाने लग गयी। तब यह पूछना स्वाभाविक था कि सम्पत्ति का न्यायानुसार मूल्य (Moral Value) क्या है? इंग्लैंड की क्रान्ति असमय थी परन्तु फ्रांस की क्रांति ठीक समयानुकूल थी। वहां मार्च १७९१ में राजविधानानुसार सर्व साधारण के संघ (Guild) बन्द कर दिए गये थे। जून १७९१ में पैरिस में कोई भी संघ बनना निषिद्ध ठहराया गया था। नेपोलियन के बनाए हुए विधान भी कुछ इसी प्रकार के थे। १८०३ ईस्वी में नियम बनाया गया कि प्रत्येक मजदूर एक पास (Livert) रक्खा करे और जब भी पुलिस चाहे उसे दिया करें। १८९० ईस्वी में यह पास प्रथा बन्द हो गई। इस बीच में राजाज्ञा भंग करके अनेक संघ बनाए गए। उनमें से एक 'जरनीमैन'

(Journeymen) का संघ भी था। इस संघ में पुराने ढंग से हलफ लेकर लोग दाखिल हुआ करते थे। दूसरा संघ म्यूच्युलाइट्स (Mutulites) नाम का था। यह संघ व्यापार से सम्बन्धित था। यद्यपि फ्रांस की सरकार ने इस संघ को अवैधानिक घोषित कर रक्खा था फिर भी १८२३ ई० में इसमें ११००० सदस्य प्रविष्ट थे। ये और इसी प्रकार के अन्य संघ प्राय: सभी रणोद्यत सघ थे और इनके सभी कार्य गुप्त रक्खे जाते थे। परन्तु इन सबका उद्देश्य एक ही अर्थात् मजदूरों की अवस्था को उन्नत करना था।

(२) विलरमी की रिपोर्ट से प्रकट है कि उस समय मजदूरों को १५ घण्टे काम करना पड़ता था। मजदूरों की आबादी में ६१ प्रति शतक ऐसे व्यक्ति थे जिनकी आय आवश्यकता से कम थी। इन सब घटनाओं से अशान्ति बढ़ रही थी।

(३) कौण्ट हेनरी दी सेन्ट साइमन (Count Henri de saint cimons १८६०-१८२५) यह शांत और मौलिक विचारक था। इसके विचार भी समाजवाद को पुष्ट करने वाले थे। १८३० ईस्वी की क्रांति से इसकी प्रसिद्धि बढ़ गई। साइमन की विचार धारा इस प्रकार थी:—

(क) एक आदमी जो दूसरे को लूटता है यह लूट बन्द होनी चाहिए। इसकी जगह सबको मिलकर नेचरको लूटना चाहिए।

(ख) समाज का उद्देश्य दरिद्रता और सामाजिक भेद को दूर करना होना चाहिए।

(ग) धनियों का समाज, पैतृक रिक्थ (Here ditament) प्राप्ति पर निर्भर है। फल इसका यह होताहै कि विना लिहाज योग्यता और अयोग्यता के एक व्यक्ति विना पुरुषार्थ ही के धनी

हो जाता है। इसलिए यह प्रथा बन्द हो जानी चाहिए और धनियों के अधिकार में जो उपज के साधन हैं उन सबका आधिपत्य समाज का होना चाहिए।

(घ) सामाजिक भेद दूर होने का (देखो (ख) उद्देश्य यह नहीं है कि जन्म से प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे के बराबर समझा जावे अपितु इन कृत्रिम भेद-भावों के दूर होने पर स्वभावतः धर्मानुसार प्रभुत्व, योग्यता और बुद्धि के अनुसार स्थापित हो जावेगा।

सेन्ट साइमन ने यह भी चाहा था कि मजहब की जगह एक प्रकार का वैज्ञानिक आस्तिकवाद स्थापित हो जावे जिसमें ईसाइयत की उत्तमोत्तम आचारिक शिक्षा तथा स्वार्थ रहित होकर ज्ञानानुकरण करना शामिल हों।

(४) फ्रेन्कोइस फौरियर(Francois Fourier १७७२-१८३७) यह व्यक्ति अपठित था परन्तु इस कमी को वह अपने माधुर्य से पूरा करता रहता था। उसकी सम्मति थी कि समाज का सगठन इस प्रकार का होना चाहिए जिसमें मनुष्यत्व का समावेश हो। पूंजीवाद पारस्परिक सहयोग में बाधक है इसलिए इस बाधा को दूर करके प्रगतिशील कृषकों का एक सगठन बनाना चाहिए जिसे अपनी-अपनी कुशलता और अपनी-अपनी स्वाभाविक प्रकृति के अनुसार विभक्त किया जावे जिसमें प्रत्येक के लिए काम मिलने का प्रबन्ध हो। उत्तम काम का उत्तम बदला मिले और मनोरजनार्थ भी थोड़ा काम किया जावे। फौरियर विरासत के रखनेके पक्ष मे था। कला कौशल से जो उत्पन्न हो उसे मजदूरों, मिलमालिकों तथा उत्तम मस्तिष्क रखने वालों में

विभक्त कर देना चाहिए। इस विभाग से सामाजिक भेद यद्यपि दूर नहीं होते परन्तु उनमें सहयोग रह सकता है।

(५) लूइस ब्लेंक (Louis Blank १८१३—१८८२)—यह काल्पनिक समाजवादी था जिसने यत्न प्रारम्भ किया कि सुधार के लिए राजसत्ता को काम में लाया जावे। समाज वाद के प्रस्तावों में इसका स्थान समाजवाद के केवल जुबानी जमा खर्च करने वालों और मार्क्स के वैज्ञानिक समाजवाद के बीच का समझना चाहिए। इसने अपने पहिले ग्रन्थ *'Organization du Travail'* में जो उसने १८३६ ई० में लिखा था, पूंजीवादियों की आर्थिक व्यवस्था की बहुमूल्य आलोचना कीथी और उसका यह यत्न फ्रास की आर्थिक समस्या के सुधार का पहला यत्न समझा जाता था। यह राज्य सत्ता का विरोधी नहीं था किन्तु उसे सुधार का साधन मानता था उसकी सम्मति में राजनैतिक क्रांति से पहले आर्थिक सुधार आवश्यक था।

(क) श्रम का बदला

साइमन के अनुसार यह बदला किये हुये काम पर होना चाहिये,फौरियर पैदावार को मजदूर,धनी और अच्छे मस्तिष्क वालों में बांटना चाहता था परन्तु इससे सर्वथा भिन्न ब्लेंक का नया फारमूला यह था "प्रत्येक से उसकी शक्ति के अनुसार लेकर, प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार देना।"[1] समता

1—अंग्रेजी के शब्दों में:—"From each according to his powers, to each according to his needs. (A history of socialism by sally Groves P. 34)

ब्लेंक के अनुसार, यथाभाग होती है। पूर्णतया समता सचाई के साथ उसी अवस्था में हो सकती है जब प्रत्येक व्यक्ति, ईश्वर-प्रदत्त शारीरिक सामर्थ्यानुसार, जितनी पैदावार वह उत्पन्न कर सकता है, करे और उसमें से अपने लिये उतनी रक्खे जितनी उसकी जरूरत है।

(६) पियर्स जोजेफ प्रौढन

प्रौढन ने ब्लेंक के उपर्युक्त ग्रन्थ के एक वर्ष बाद एक ग्रन्थ सम्पत्ति के प्रकार [2] विषय पर निकाला, उसमें सम्पत्ति को चोरी का माल बतलाया था कारण उसने यह दिया कि वह अन्यों के श्रम से उत्पन्न होती है और लगान, ब्याज, और लाभ के रूप में, बिना परिश्रम किये, उनसे लेली जाती है। इसके बाद उसने एक और ग्रन्थ लिखा जिसमें पूंजीपतियों के घनार्जन के ढंगों की आलोचना करते हुये एक उद्धृत भाग रहित (Nodiscount Bank) बेंक खोलने का प्रस्ताव किया था। उसके अनुसार समाजवाद की उन्नति की चरम सीमा यह होनी चाहिये कि पूर्णतया प्रतिफल में समता रखते हुये, एक स्वतन्त्र समाज की स्थापना हो और उसमें अशासन का साम्राज्य हो। उसकी शिक्षाओं का फ्रांस और रूस में बड़ा प्रभाव था।

---

(2) A pamphlet on the nature of property by P. J. Proudhon.

चौथा अध्याय

मार्क्स के वर्गवाद का जन्म

(१) प्रारम्भ

समाजवाद के रूप, जो इससे पहले इंग्लैण्ड और फ्रांस में बने थे और जिनका विस्तार ओविन, साइमन, फौरियर और प्रोढन आदि ने किया था, काल्पनिक समझे जाते थे क्योंकि उनके साथ क्रिया का अभाव था। कार्लमार्क्स ने इस कमी को पूरा करने का न केवल यत्न किया अपितु उसने अपने वर्गवाद को वैज्ञानिक रूप भी दिया। कार्लमार्क्स डाक्टर आव फिलौसोफी था। उसका साथी ऐन्जिल भी एक अनुभवी विद्वान् था। ये दोनों युवक थे। कार्य आरम्भ करते समय मार्क्स की आयु २६ और ऐन्जिल की २७ वर्ष की थी। ये दोनों प्रारम्भ ही से इंग्लैण्ड और फ्रांस की घटित घटनाओं पर दृष्टि रखते थे। सच तो यह है कि इन दोनों की घटित घटनाओं ने ही इन युवकों का ध्यान कारवाई की ओर आकर्षित किया था। ऐन्जिल ने तो एक ग्रन्थ भी इंग्लैण्ड के सम्बन्ध में (The Condition of Working classes in England) प्रकाशित किया था। मार्क्स ने अपने वाद के प्रचार के लिये सबसे पहले यह काम किया कि एक विज्ञप्ति द्वारा अपने सिद्धांतों को प्रकट किया।

(२) मार्क्स की विज्ञप्ति

मजदूरों के पहले अन्तर्जातीय संघ के समाप्त होने के कुछ महीनो के बाद मार्क्स ने एक विज्ञप्ति निकाली थी, यह संघ १८४८ ई० में संगठित हुआ था। वह विज्ञप्ति यद्यपि वर्गवाद संघ के लिये लिखी गई थी, जिसका संगठन नवीन ढंग से किया गया था, परन्तु उसमें जो कुछ लिखा गया था, वह इन दोनों युवकों के वर्षो की खोज और अध्ययन का परिणाम था। उस में कुछ नई बातें नहीं थी अपितु वे उसी प्रकार की बातें थी जो इससे पहले इस विषय के विद्वानों ने लिख रक्खी थीं। विज्ञप्ति की भूमिका मे मार्क्स ने जो कुछ लिखा था वह "डी बोनैल्ड" और "ली मैस्टरि" (De Bonald & Le Maistre) के अनुदारवाद (Anti-liberal theory) से मिलता-जुलता था उसमें "पैन" (Paine) जैसे व्यक्तियों के "क्रमश. वर्धमानवाद की गुन्जाइश नही थी पैन के इस वाद का आधार प्राकृतिक नियम और मनुष्य की सफलता के विचार थे। अस्तु अब हम मार्क्स की इस विज्ञप्ति पर एक दृष्टिपात करना चाहते हैं।

विज्ञप्ति मार्क्स के निम्न ५ सिद्धान्तों को प्रकट करती है: —

(३) मार्क्स की विज्ञप्ति

(१) संसार के समस्त इतिहास, मानवी श्रेणियों के संघर्षण के इतिहास होते हैं। यह संघर्षण, एक श्रेणी की मांगों और दूसरी श्रेणी का मनोरंजन और विशेषाधिकारों के देने में आना-कानी करने से, हुआ करता है।

(२ पैदावार की उत्पत्ति के साधनों और पैदावर करने

में जो श्रम किया जाता है इनके सम्बन्ध में कौन क्या करता है, इससे श्रेणियों की पहचान हुआ करती है।

(३) वर्तमान संघर्षण दो श्रेणियों में है जिनमें से एक श्रेणी उत्पत्ति के समस्त साधनों पर अधिकार रखती है और उन्हें अपने लाभार्थ प्रयुक्त करती है और दूसरी श्रेणी मजदूरों की है जिनका अधिकार है कि मजदूरी लेकर काम करें या न करें। पहलों को साधनोत्पत्ति का मालिक और दूसरों को श्रमजीवी कहते हैं। इनमें वर्तमान संघर्षण का कारण यह है कि पहली श्रेणी सम्पत्ति रखती हैं और उसे वह अनेक प्रकार के अपने मनोरंजनों में व्यय करती है और दूसरी श्रेणी पूंजीशून्य है वह केवल उतना सुख भोग सकती है जिसे यह अपने मजदूरी के पैसों से क्रय करती है।

(४) सघर्ष श्रेणी का उद्देश्य यह है कि एक ऐसे समाज की स्थापना करे जिसके व्यक्ति सम्पत्ति के मालिक न हो और समान समता पर निर्भर हों। अवश्य उत्पत्ति के साधनों का मालिक प्रति समाज होगा। इस प्रकार एक श्रेणी से सम्पत्ति के अधिकारों को लेकर उसे समष्टि रूप समाज के हवाले कर देने से श्रम जीवियों को इच्छित सुगमताएं स्वयमेव प्राप्त हो सकती हैं।

(५) पूंजीपतियों ने अपनी आर्थिक और राजनैतिक नीति से ऐसा मार्ग निश्चय कर रखा है कि जिससे श्रमजीवियों को अपनी आर्थिक और अन्य सुगमताएँ स्वमेव त्याग देनी पड़ें।

उदाहरण के लिये देखो कि एक कारखाने में बहुत से मजदूरों को जमा करके घनियों ने इनके लिये यह सम्भव कर रखा है कि वे सब मिलकर उन (घनियों) से अच्छा व्यवहार कराने के लिये हड़ताल कर सकें। (भाव इसका यह है कि इससे मजदूरों को तो भूखा रहना पड़ेगा)। इसके सिवा घनियों की पार-

स्परिक स्पर्धा से वस्तुओं के मूल्य सस्ते हो जाने और परिक्षीणता के प्रभाव से जहां स्वयं उन्हें हानि होती वहां श्रमजीवियों के जीवन निर्वाह के नियमों पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। श्रमजीवियों को अच्छा कार्यकर्ता बनानेकी इच्छा से,शिक्षा देकर धनी लोग उनमें से कुछ एक को अपना अच्छा सहायक भी बना लिया करते हैं। उपर्युक्त सिद्धान्तों का विवरण देते हुये विज्ञप्ति में कुछ एक और बातों का भी उल्लेख किया गया है जिनका विवरण इस प्रकार है:—

(१ वर्गवादियो का कर्त्तव्य है कि वे श्रमजीवियों को भली भांति बतलावे कि उनका लाभ किसमें हैं।

(२) यदि युद्धकर्ता शत्रु, मजदूरों की स्वतन्त्रा का विरोधी हो तो उसके विरुद्ध युद्ध मे वर्गवादी भाग ले सकते हैं।

(३) श्रम जीवियों के लिये आवश्यक है कि सार्वजनिक सम्मत्याधिकार प्राप्त करने के लिये यत्नवान् रहें।

(४) जहां सम्भव हो वहां वर्गवादी यत्न करें कि राज्य के उच्च पदों और समाचार पत्रों को,प्रजातन्त्रीय साधनों से अपने अधिकार में रक्खें।

(५) इसकी कोई सम्भावना नहीं है कि पूंजीपति, श्रमजीवियों के प्रतिनिधियों को ऐसा कानून बनाने दें जिससे पूंजी पति शासक श्रेणी से बहिष्कृत हो जावें। इसलिये श्रम जीवियों को चाहिये कि उद्देश्य की पूर्ति के लिये. शस्त्र शक्ति से काम लेने के लिये भी तय्यार रहें। मार्क्स की इस विज्ञप्ति पर विचार से पहले यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उसने जो बातें और इस सम्बन्ध में कही हैं उनका भी यहां उल्लेख कर दिया जावे:—

(४) मार्क्स के अन्यसिद्धान्त

मार्क्स ने उन वादों को, जिन्हें उसने अपनी विज्ञप्ति में अंकित किया है, अपने ग्रन्थ "कैपिटल" में जिसका पहला भाग १८६७ ई० में *प्रकाशित हुआ था और दूसरा भाग* उसके कुछ समय बाद पुष्ट, किया है। जो अन्य ग्रन्थ उसने पीछे से लिखे है उनमें भी सिद्धान्तों की पुष्टि की है। उसके कुछ एक और भी सिद्धान्त थे। उसका एक वाद भृत्यातिरिक्त वाद (Theory of Surplus Value) है अपने ग्रन्थ 'कैपिटल' में उसने इसकी विशुद्ध व्याख्या की है। अंग्रेजी भाषानुवादक "कोल" ने कैपिटल की भूमिका में लिखा है कि मार्क्स के अनुसा॰ भृत्यारिक्त-वाद केवल गरीबों के लूटने का नाम है। इस वादकी अनुकूलता में मार्क्स ने उन समस्त बातों का संग्रह किया है जो पूंजी-पतियों में गरीबों के लूटने में काम में आया करती है। और जिसका *विवरण, यथा स्थान, आगे के* पृष्ठों में आवेगा। उस का दूसरा वाद है "राज्यवाद"। मार्क्स ने राज्य को समष्टि रूप से प्रजा की निर्वाचक संस्था बतलाया है। कोल ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि धनियों के लिये एक विधान और गरीबों के लिये दूसरा, यह नियम उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी धनिकता और दरिद्रता है। उसका तीसरा वाद "श्रेणी शून्य समाज" है। मार्क्स का कहना है कि आर्थिक अपहरण *और राजनैतिक प्रभुत्व*, ये दोनों बातें, इतिहास साक्षी है कि श्रेणी २ में पलटाये चली जाती हैं। उसकी दृष्टि में मानव इतिहास, आर्थिक और राजनैतिक संघर्षण का क्रमपूर्वक विवरण होने के सिवा और कुछ नहीं है और यह जारी भी बराबर उस समय तक रहेगा जब तक कि राज्य और माल की उत्पत्ति में श्रेणी भेद रहेगा। पूंजीपतियों और श्रमजीवियों का पारस्प-

रिक संकर्षण मार्क्स की दृष्टि में, विकास कार्य प्रणाली की एक लड़ी है। मनुष्यत्व की दौड़ की अन्तिम लड़ी, श्रेणीशून्य समाज ही होगी।

(५) इन सबका निष्कर्ष

मार्क्स के सिद्धान्त, पुनरुक्ति आदि कमियोंके निकाल देने के बाद मुख्यतया ये रहते हैं:—

(१) पूँजीपतियों और श्रमजीवियों में बड़ाई-छुटाई का भेद न रह कर समता होनी चाहिये।

(२) उत्पत्ति के साधनों का मालिक समाज हो।

(३) समाज श्रेणी रहित होना चाहिये।

(४) राज्य पर अहिंसा अथवा हिंसा जिससे भी काम लेने में सफलता हो काम लेकर अधिकार प्राप्त करना चाहिये क्योंकि बिना राजबल के मार्क्सवाद नहीं फैल सकता।

(५) सार्वत्रिक सम्मत्याधिकार की प्राप्ति करनी चाहिये।

(६) मजदूरों की आर्थिक अवस्था ठीक करने के लिए उसने भृत्यातिरिक्तवाद आदि वादों का वर्णन किया है।

(७) मार्क्स की दृष्टिमें जीवोद्धारक समस्या केवल आर्थिक समस्या है। इसीलिये उसने इतिहास को केवल भौतिकवाद प्रतिपादक बतलाया है।

इनके सिवा उसके अन्य समस्तवाद इन्हीं के अन्तर्गत आ जाते हैं। इसलिये अब हम इनमे से एक-एक वाद पर आगे के पृष्ठों में विचार करेंगे। ऐसा विचार करने में हम इन बातों की तरतीब अपने ढंग से क्रम के ठीक बनाने की दृष्टि से, दे लेंगे। ऐसा करने से कोई भी बात विचार में आने से न छूटे इसका पूरा ध्यान रक्खा जायेगा।

पांचवां अध्याय

"मार्क्स पर विचार"

(१) क्या जीवोद्धारक समस्या केवल आर्थिक समस्या है?

मार्क्स ने एक जगह वर्णन किया है कि "वस्तुओं के उत्पादन में, जो मनुष्यों द्वारा किया जाता है, मनुष्यों को अन्यों के साथ अनिवार्य रीति से, चाहे वह उनकी इच्छा के विरुद्ध ही क्यों न हो, सम्बन्ध जोड़ना पड़ता है। अवश्य ये सम्बन्ध, उनकी भौतिकोत्पादन शक्ति के विकास का कारण बनते हैं। इन उत्पादक सम्बन्धों ही से, समाज का आर्थिक ढांचा बना करता है। इस आर्थिक ढांचे के बन जाने से, वैधानिक, राजनैतिक और सामाजिक ज्ञानोपलब्धि होती है। प्राकृतिक जीवन में, इन उत्पत्ति के प्रकारों से, जीवन के सामाजिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक कार्य प्रणालियों के साधक चरित्र का निर्माण हुआ करता है"।[१] मार्क्स के ये विचार प्रकट करते हैं कि उसकी दृष्टि में आर्थिक समस्या के सुलझ जाने से लोक और परलोक सभी काम सुधर जाते हैं। परन्तु यह विचार दूषित और जगत् रचनाओं और उसके प्रकारों के न समझने ही से उत्पन्न हो सकते

(1) Critique of political economy by Earl Marks,

हैं। मनुष्य तीन वस्तुओं का समुदाय हुआ करता है —(१) स्थूल (दिखाई देने वाला) शरीर, (२) सूक्ष्म शरीर जो मन बुद्धि आदि अन्तःकरणों का समुदाय होता है और जिसके विकास से मानसिक उन्नति हुआ करती है, (३) आत्मा — जो अप्राकृतिक होता है और जिसकी उन्नति की चरमसीमा बाहर के साधनों से नही अपितु भीतर के साधनों से प्राप्त हुआ करती है। जिन्हे निदिध्यासन (Intuitiou या Intuitional perception) आदि नामों से पुकारा करते हैं स्थूल शरीर और एक दरजे तक सूक्ष्म शरीर भी आर्थिक समस्या के सुधरी हुई होने से, सुधर जाया करते हैं परन्तु आत्मिकोन्नति, आर्थिक अवस्था के अच्छी हो जाने से किस प्रकार हो सकती है ? इस बात पर मार्क्स ने विचार नही किया। बुद्ध, ईसा, शकर, दयानन्द आदि सभी सुधारकों ने धन को शारीरिकोन्नति का ही कारण माना है उससे आत्मिकोन्नति नही हो सकती। यह आत्मिकोन्नति में बाधक तो हो सकता है। रोमन कैथोलिक पादरियों के उत्कर्ष काल में अनेक मठ और सघ यतियों और ब्रह्मचर्य व्रतधारी पोपों और पादरियों के बने परन्तु ये सब इसीलिये आचारिक दृष्टि से फेल हुए कि इनमें धन के लिये लोलुपता के भाव उत्पन्न हो गये थे, इसलिये भी फेल हुए कि इनमें मनु के अनुसार व्यवसाय के साथ धार्मिकता या धार्मिकता के साथ व्यवसायात्मिक बुद्धि, जैसी आश्रम और वर्णों के सम्बन्ध में उसने वर्णन की है नहीं थी। "गिब्बन" और "लोकाक" ने भी इन मठों और संस्थाओं

की असफलता का कारण, उनके निवासियों में मर्यादित जीवन का अभाव और आचारिक जीवन के लिए अनुत्साह के भावों का उत्पन्न हो जाना ही प्रकट किया है।[1]

(२) उस महोदय ने भी, इस बात पर विचार करते हुये कि मार्क्स क्यों नहीं पनप रहा है उसका उत्तर यह दिया है कि "इस वाद को क्रियात्मक रूप देने में कठिनता यह है कि अध्यात्म वाद के रू से, मनुष्यों में उनकी भिन्नता के कारण, भेद का होना अनिवार्य है। जबकि वर्गवाद आरम्भ ही से सब में समता चाहता है[2]।" वर्गवाद का एक दोष यह भी है कि वह विश्वात्मा को नहीं समझता न उसने कर्म विज्ञान पर कभी विचार किया है। जब पुरुषार्थ में समता नहीं तो उसके फल में समता किस प्रकार हो सकती है? फलदाता मनुष्य नहीं अपितु वही विश्वात्मा=परमात्मा है। अस्तु। गेलल और रसल ने भी प्रकट किया है कि वर्गवाद की राह में रुकावट का कारण मनोविज्ञान है।[3]

---

(1) Roman Empire by Gibbanch, XXVII तथा Political science by Leacock Part III ch II Socialism,("Premature celibacy and retirement from the world and seeking of company instead of solitude caused the moral failure") ये शब्द लीकाक के प्रयोग में किये गये हैं।

(2) Guide to socialism by G, B, shaw P. 298.

(3) Political science by Gallal P. 387 and Road to freedom by Bertrand Russell.

(३) वर्गवाद की राह में रुकावटें

हिन्डस ने एक जगह लिखा है कि "मार्क्स इज्म" के रास्ते मे तीन रुकावटें हैं जिन्हें अपसह या अशिष्ट कहा जाता है:— (१) धर्म, (२) निजूसंपत्ति और (३) पारिवारिक जीवन – इनकी उपेक्षा करके वर्गवादी एक विलक्षण और भयावह व्यक्ति बनाना चाहते हैं जिसके लिये प्राचीनकाल से सुप्रसिद्ध शब्द धर्म, स्वतन्त्रता, दौलत, घर और परिवार, अपना कोई अर्थ नहीं रखते हैं और जिनके शरीर और मस्तिष्क का एक मात्र उद्देश्य नये बनाये हुए समाज की इच्छा पूर्ति करना है। और यह इच्छा केवल पार्थिव और अपारमार्थिक जीवन से सम्बन्धित है। वर्गवाद में मानसिक, भावविशिष्ट, चित्रकला से सम्बन्धित सभी बातों को स्थूलेन्द्रि ही से सम्बन्ध जोड़कर सोचा जाता है। मानसिक, आत्मिक, शरीर से भिन्न आत्म-सत्ता, पुनर्जन्म और परलोक आदि सभी शब्द उसके लिए निरर्थक हैं।[१] स्पष्ट है कि केवल जड़वाद का आश्रय लेने और आर्थिक समस्या को हल कर लेने से, वर्गवाद कहीं भी फूल फल नहीं सकता।

(४) इतिहास का केवल भौतिकवाद प्रतिपादक होना

कार्लमार्क्स ने सब कुछ आर्थिक अवस्था के सुधार को आवश्यक ठहराते हुए,इतिहास को भी केवल भौतिकवाद प्रतिपादक ठहराया है जिससे प्रकट होता है कि मार्क्स की दृष्टि में प्रकृति के सिवाय जगत् में और कुछ नहीं है। यह बात आम तौर से न तो जगत् में कभी स्वीकार की गई और न अब स्वीकार की

(१) The great oeffnsive by Maurice Hindus published in 1933.)

जाती है । विशेष कर इस देश का तो बच्चा-बच्चा भी जानता है कि जगत् बनाने वाली केवल प्रकृति नही अपितु पुरुष (ईश्वर) भी है और उस जगत् को व्यवहार में लाने वाला दूसरा पुरुष (जीवात्मा) है । इसलिए जगत् की व्याख्या का इतिहास न केवल भौतिक अपितु प्रकृतिपुरुषात्मक होना चाहिए ।[1] डाक्टर भगवानदास की सम्मति में, मार्क्स के लेखानुसार, इतिहास का केवल भौतिकवाद की व्याख्या होना, सत्यता का छोटा आधा है । आत्मवाद, आदर्श (अद्वैत) वाद, शूरत्व मिलकर प्रकृति पुरुषात्मक इतिहास का बड़ा आधा है ।[2] अस्तु, यहां भी विचारणीय है कि संसार मे बुद्धिवाद के जन्म दाता आत्मिकोत्कर्ष प्राप्त किये हुए व्यक्ति, केवल प्रकृति से कैसे बन गये, उनमें चेतना कहां से आई ? इन और इस प्रकार के अन्य प्रश्नों के उत्तर, इतिहास की, केवल भौतिक व्याख्या से नहीं दिये जा सकते । मार्क्स के पक्ष पोषक एक व्यक्ति ने इन आक्षेपों का उत्तर इस प्रकार दिया है—"जिस प्रकार प्रकृति के असीम मिश्रणों से, पीच (फारस का सेव), डोकवेरी (The berry of Dogwood) एक दूसरा फल, ट्यूलिप (Tulip) पगड़ी की तरह का एक तुरकी का फूल, इत्यादि पैदा हो जाते है इसी प्रकार इन मिश्रण से एस्टिन (Enstein)

---

(१) डाक्टर भगवानदास ने इसके लिए इसी वास्ते एक जगह लिखा है कि - (Spritu materealist interpretation of history होना चाहिए (Ancient V. Modern Socialism by Dr. Bhagawan Dass.)

(2) Ancient V. Modern Socialism by. Dr. Bhagawan Dass p 27.

जैसे वैज्ञानिक और मूर्ख भी पैदा हो जाते है।[1]

(२) इस बात का उत्तर, कि आत्मबलिदान की भावना प्राकृतिक है अथवा बुद्धि जन्य या ईश्वर प्रदत्त अथवा अन्य किसी गूढ कारण का कार्य है ? इस प्रकार दिया गया है "एक प्रकार का मनुष्य का चरित्र है जिसके द्वारा मनुष्य आत्म-बलिदान आत्मत्याग, सेवा और तपस्या किया करता है। मार्क्स वादी ऐसे अधे नहीं है जो इस चरित्र की सत्ता से इन्कार करे।[2]"

(३) "मनुष्य का चरित्र, मार्क्स वादियों के अनुसार, (क) प्राणी शास्त्र (धमनि, शिरा, स्नायु और मासपिंड के ढांचे) और (ख) गृह शिक्षा, संघ आदि सामाजिक कृत्यों के प्रभावों का सघात है। आजकल की भाषा में विशेष प्रकार के चरित्र को परमार्थ निष्ठा (Spiritual) कहा गया है परन्तु वह प्राणी शास्त्र और सामाजिक प्रभावों से पृथक् कोई वस्तु नही है। इसी चरित्र को वैज्ञानिक भाषा में प्राकृतिक कहा जाताहै।

मार्क्सवाद में भी आत्मज्ञान (परमार्थनिष्ठा) प्राकृतिक कहे जाते हैं। निश्चित रीति से ये प्राणी शास्त्र और समाज के प्रभावों से भिन्न कोई वस्तु नही है। इन्हें कदापि प्राकृतिक नहीं कह सकते।[3] अब इन पर थोड़ा विचार करना चाहिए।

(४) मार्क्स के पक्ष पोषक के दिये उपर्युक्त विवरण से

1—why socialism by Jai Prakash Narain p II2,

2— Do p 112&113,

3 Why socialism by Jai Prakash Narain p113,

यह बात स्पष्ट है कि वह संसार में प्रकृति के सिवा किसी दूसरी वस्तु की सत्ता नहीं मानता परन्तु वह इन उत्तरों में यह नही बतला सका कि चेतना (Conscious ness) फिर जगत् में कहा से आ गई ? एक प्राणीशास्त्रज्ञ हैकल ने, जो आत्मसत्ता को नहीं मानता था कि वह कोई स्वतन्त्र सत्ता है, मनुष्य के शरीर के बनावट की व्याख्या प्रकृति ही से करने का यत्न किया था। अनेक कल्पनाओं के करने के बाद निर्जीव शरीर जब बन गया तो अब प्रश्न आया कि उसमें चेतना कहां से आवे? तो इस प्रश्न के आते ही उसका बनाया हुआ प्राकृतिक भवन एक साथ धम्म से गिर पड़ा और उसे स्वीकार करना पड़ा कि चेतना की वैज्ञानिक जांच नहीं हो सकती,इसलिये कि जांच करने वाली चीज भी तो वही चेतना ही है। इसलिये जो परीक्षा है वहीं परीक्षक भी।[1] इस प्रकार देख लिया गया कि प्रकृति से पुरुष नही बन सकता न चेतना की उत्पत्ति और किसी प्रकार से हो सकती है। पक्षपोषक ने चेतना को उत्पत्ति को खाला जी का घर समझ रखा था कि उसे बातों-बातों के द्वारा ही प्रकृति से उत्पन्न कर लेंगे परन्तु यह नहीं सोचा कि उससे पहले बड़ों-बड़ों की गाड़ी यहां आकर अटक चुकी है और यही कारण है कि जड़वाद आज तक फूल फल नही सका।

(५) कार्लमार्क्स का पश्चाताप

इसलिये इतिहास को केवल भौतिकवाद प्रतिपादक मानना, सर्वथा भूल है। मार्क्स के इस सिद्धान्त पर,कि आर्थिक समस्या के सुधार ही से सब कुछ हो जाता है, जब आक्षेपों की भर मार हो गई तो उसे गम्भीरता के साथ अपने सिद्धान्त पर दृष्टि

1—Riddle of the universe by Ernest Hecal,

डालनी पड़ी और अन्त में उसे इसके लिये पश्चाताप करना पड़ा। "सैलीग्रेव्स" ने एक जगह लिखा है कि "इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि वह (मार्क्स)इस आर्थिक सुधार को प्रबल साधन मानता था परन्तु जीवनान्त में,वह तथा उसका साथी'इनजिल्स', दोनों इस बात से दुखी थे कि क्यों उन्होंने, आर्थिक सुधार को एक मात्र साधन जीवनोद्धार का माना, उन दोनों ने साक्षात् और असाक्षात् अपने-अपने आवेदनों से इस बात को स्वीकार किया कि (आर्थिक समस्या से भिन्न) विचार और उनके लिये आग्रह करना भी अपने लिये समुचित रीति से पृथक् स्थान रखते हैं यद्यपि उनका निकास अन्त में उत्पत्ति के साधनों ही से किसी न किसी प्रकार सम्बन्धित होता है परन्तु उनकी पृथक सत्ता बनी रहती है। और नये विचार अन्य श्रेणी के विचारों के साथ जुड़ जाते हैं जिनसे प्रारम्भ में उनकी असम्बद्धता होती है।"[1] अस्तु: स्पष्ट है कि मार्क्स अन्त में इस विषय का पक्षपोषक नहीं रहा और उसका साथी इन जिल्स भी कि केवल आर्थिक समस्या के सुलझ जाने से जगत् की समस्त समस्यायें सुलझ जाती है। इसलिये अब इस विषय को हम यहां समाप्त करके आगे चलते है और बाकी के विषयो मे से प्रत्येक को क्रम पूर्वक लेने का यत्न करेंगे।

(२) पूंजीपतियों और श्रमजीवियों में बड़ाई छुटाई का भेद न रहकर समता होनी चाहिये।

(१) इस शीर्षक में मार्क्स के दिये हुये कई विषय आ जाते हैं। उसने पूंजीपतियों और मजदूरों में छुटाई बड़ाई का भेद न

(1) A History of Socialism by Sally Groves p-56.

रहकर समता लाने का उद्‌देश्य प्रकट करते हुये विषमता के कारण इस प्रकार प्रकट किये है:—

(१) पूंजीपति साधनोत्पत्ति (मिल, भूमि आदि के) मालिक हैं। मजदूरों को जो वे मजदूरी देते है, उस पर उन्हें निर्वाह करना पड़ता है।

(२) पूंजीपति सपत्तिवान् है और राज्य में बड़ा रसूख रखते है। इसलिये वे राज्य शासन द्वारा भी मजदूरों को दवाये रखने के प्रयत्न करते रहते हैं।

(३) धनवान् होने से वे मनोरंजनों में अधिक धन व्यय कर सकते है जब कि मजदूर मजदूरी से कठिनता से अपना पेट भरते हैं और उन मनोरंजनो से वंचित रहते है।

ये और इस प्रकार के जितने भी विषय उपस्थित किये जाते है उनका आधार श्रममूल्यवाद (The labour theory of value) ही है। १९ वीं शताब्दी के समस्त सपत्तिवाद इसी के आधार पर बने थे। "थामस होड्‌सकिन ने इसी वाद के आधार पर इग्लैण्ड के अर्थ शास्त्रियों का विरोध किया था –[1] मार्क्स ने भी अपने "पूंजीपतियों के एकीकरण और श्रमजीवियों के दारिद्र्यवाद" की स्थापना इसी (श्रममूल्यवाद के) आधार से की थी[2] मार्क्स के विचार ये थे कि यदि पूंजीपतियों के इस

(1) Labour defended against the claims of capital by Thomas Hodgskin.

(2) अंगरेजी के शब्द इस वाद के ये हैं:—"The theory, of capitalist-concentration and Prolatarian pauperization.'

घन एकत्रीकरण की प्रवृत्ति को जारी रहने दिया जावे तो सारी सम्पत्ति के मालिक कुछ एक व्यक्ति, जो बाजार के अन्तिम विजेता होंगे, हो जावेंगे और मजदूर बुरे से बुरे परिणाम पर पहुंचने के लिये बाध्य होंगे। मार्क्स के समस्त संघर्षण का आधार यही वाद था। मार्क्स ने इस अवस्था को न आने देने के उद्देश्य ही से क्रान्तिकारी प्रोग्राम पर बल दिया था और राजनैतिक वध (Political murder) भी उसी समय जायज ठहराय जाने लगे थे।'

मार्क्स के विरुद्ध अनेक वर्गवादी

मार्क्स ने जितना बल मिल मालिकों अथवा पूंजीपतियों और मजदूरों की समता पर दिया उतना ही उसके विरुद्ध आन्दोलन बढ़ता गया। कुछ एक ने तो यह प्रकट किया कि समस्त मजदूरों में भी समता नहीं हो सकती। मार्क्स ने निश्चय कर रक्खा था कि इन पूंजीपतियों और मजदूरों में असमता का मुख्य कारण भृत्यारिक्तवाद (Theory of surplus value) था। इसी प्रकार वेब (Wabb) के सामाजिक विकासवाद का आधार राजस्ववाद था। वेब का यह वाद प्रायः मिल के भूमि सुधार के विचारों का विकसित रूप ही था। इस वाद का अभिप्राय यह है, जैसा कि वेब ने प्रकट किया है कि जब समाज पुष्ट होता और अपनी जरूरत से अधिक पैदावार कर लेता है तो उसी अधिक पैदावार पर संघर्षण होताहै कि उसका मालिक कौन हो ? तो समाज मे जो श्रेणी अधिक बलवान होती है वह उस अधिकता का स्वामित्व ग्रहण कर लेती है और बाकी में से निर्बल श्रेणी वाले मजदूरों को, मजदूरी के रेट से मजदूरी मिल

---

(1) A History of socialism by sally Groves p, 81

जाती है। इस अधिक पैदावार की स्थिति राजस्व की सी होती है। जो भूमि अधिक उपजाउ और स्थान आदि की दृष्टि से अधिक उपयोगी समझी जाती है उसकी पैदावार अन्यों की अपेक्षा अधिक होती है और उसका राजस्व भी अधिक होता है, उसके प्राप्त करने में धन भी अधिक व्यय होता है। ऐसी भूमि के राजस्व को 'अमुक्त हस्त राजस्व" कहते हैं। निजू सम्पत्ति के नियम तथा स्वतन्त्र प्रतियोगिता, की मर्यादा से वह व्यक्ति जो उस भूमि का मालिक है,अधिक पैदावार का मालिक वही बनता है। मार्क्सवाद चाहता है कि उस अधिक पैदावार का मालिक समाज हो परन्तु यह उस समय तक नहीं हो सकता जब तक उस भूमि के मालिक ने, अब तक जो व्यय उस भूमि के सम्बन्ध में किया है उसे समाज न चुका देवे। यदि क्लिष्ट कल्पना के तौर से यह मान भी लिया जावे कि समाज उसका मालिक हो तो समाज उसका बटवारा करेगा। वह भी तो श्रमजीवियों को योग्यता के अनुसार ही देगा। सबको बराबर तो नही दे सकता। अवश्य कम से कम वेतन पाने वालों की मजदूरी इतनी होनी चाहिये जिससे एक मजदूर सभ्यता का जीवन व्यतीत कर सके। अधिक मजदूरी जो दूसरे को मिलेगी उसे उसकी योग्यता का राजस्व समझना चाहिये। स्पष्ट है कि प्रश्न पूंजीपति और मजदूर के बराबर करने का नही है अपितु मजदूरों की भी पारस्परिक बराबरी का प्रश्न है। जो वैज्ञानिक खोज करते हैं जो मस्तिष्क से काम करते हैं जो इंजीनियर आदि हैं उनकी मजदूरी और एक कुली की

---

(1) A History. of socialisn by Sally Groves, P 109&110

मजदूरी बराबर किस प्रकार हो सकती है? यहां एक उदाहरण दिया जाता है जिससे यह बराबरी का प्रश्न सदा के लिये तय हो जाएगा।

रूस का एक उदाहरण

वर्गवाद के सिद्धान्तानुसार प्रत्येक को, दैनिक या मासिक मजदूरी काम की दृष्टि से नहीं अपितु उसकी पारिवारिक आवश्यकतानुसार मिलनी चाहिये परन्तु काम प्रत्येक को अपनी अपनी योग्यतानुसार करना चाहिये। कल्पना करो कि साईबेरिया प्रान्त का एक गवर्नर है, उसके परिवार में वह और उसकी पत्नी दो प्राणी है। परन्तु उसके अरदली के परिवार में पति पत्नी के सिवा दो पुत्र भी हों अर्थात् उसके परिवार में चार व्यक्ति हो तो यदि वर्गवाद के नियमानुसार वहां एक आदमी का निर्वाह ३०) मासिक मे होता हो तो उस वायसराय को मासिक वेतन ६०) और उसके अरदली को १२०) मासिक मिलेंगे परन्तु काम प्रत्येक को अपनी-अपनी योग्यतानुसार ही करना पड़ेगा। रूस में जब-जब "आरम्भ" के बाद लीनन ने मार्क्स के वर्गवाद को प्रचलित किया तो उपर्युक्त नियम ही प्रचलित किया गया था अर्थात् एक इंजीनियर और एक कुली बराबर बराबर वेतन पाते थे, परन्तु काम प्रत्येक को अपना २ ही करना पड़ता था। जब विज्ञ श्रेणी के लोगों ने देखा कि यह तो अन्धेर नगरी है, यहां सब प्रकार के धान बाईस पन्सेरी ही बिकते हैं तो उन्होंने रूस छोड़कर उन देशों को खिसकना शुरू कर दिया जहां यह अन्धेरगरदी नहीं थी। स्टेलिन ने जब देखा कि विज्ञ श्रेणी के मजदूर इंजीनियर आदि उसके कारखानों से भाग रहे हैं तब उसे विवश होकर मजदूरी में नाबराबरी के

सिद्धान्त को स्वीकार करना पड़ा, अन्यथा उसकी ५ वर्ष वाली योजना, असफलता का मुह, अनिवार्य रीति से देखती। उस (स्टेलिन)ने एक शिल्प और कलाविभाग से सम्बन्धित व्यक्तियों के सम्मेलन में कहा:—'प्रत्येक व्यवसाय और प्रत्येक कारखाना एक उन्नत समुदाय विज्ञ श्रेणी के कार्य कर्ताओं का है, उन्हें केवल उसी अवस्था में रखा जा सकता है कि उनकी वेतनवृद्धि की जावे। और उनकी मजदूरी बढ़ा दी जावे। उसने अपने कथन में वृद्धि करते हुए कहा:—"विशेषज्ञो को पीड़ित रखने की प्रथा को हम सदैव हानिप्रद और अपकीर्तिमय कार्य समझते रहे है। इसलिये इन्जीनियरों और पुराने स्कूल के शिल्पियों के सम्बन्ध में, हमें अपनी प्रवृत्ति बदलनी चाहिए और उनकी अधिक परवाह करते हुए उनका हमें अधिक ध्यान रखना चाहिए और उन्हें उत्साहित करना चाहिए जिससे वे हमारा काम करें। कुछ एक हमारे साथी समझतेहै कि अपने कारखाना में हमें पदोंपर केवल वर्गवादियों ही को नियुक्त करना चाहिये। इसीलिये कि वे बहुधा योग्य और निपुण व्यक्तियों को केवल इसलिये कि ये वर्गवादी नही होते, निकाल दिया करते हैं और उनकी जगह उनसे कम योग्य पुरुषों को,वर्गवादी होने के कारण रख लिया करते हैं। मै कहता हूं कि इससे बढ़कर बेहूदी और प्रतिघातक नीति और कोई नही हो सकती। इससे वर्गवादी समुदाय विश्वसनीय नही रहेगा और अवर्गवादी कार्यकर्ता उन के विरोधी बन जायगे।' स्टेलिन की यह वक्तृता स्पष्ट करती

१—८ अगस्त १९३१ के दैनिक 'लीडर' में इस प्रकार का एक नोट छपा था:—

हैं कि श्रमजीवियों में मजदूरी की समता का सिद्धान्त मार्क्स के नियमानुसार जो लेनन ने रूस में प्रचलित किया था,वह सफल नहीं हो सका श्रौर स्टेलिन उसके बदल देने के लिये बाधित हुश्रा। स्टेलिन की वक्तृता से यह भी प्रकट होता है कि उसकी दृष्टि में पार्टी के लाभ की अपेक्षा देश का लाभ मुख्यता रखता था श्रौर इसीलिए उसने श्रवर्गवादी को श्रपनी श्रोर खीचने का यत्न किया।

"The Experience gained in the working of the five Year plan and the necessity of making it a success have led M. Stalin to declare that it has become necessary resolutely to put an end to the equality in the pay of Skilled and unskilledlabour. Addressing a conference of industrialists, he stated in mail week;—

"In each industry and each factory there are advanced groups of skilled workers who can be retained in employment only by promoting them and raising their wages" "The persecution of specialists has always been considered by us as a harmful and disgraceful phenomenon.

Therefore let us change our attitude towards the Engineering and Technical forces of the old school, let us

पूंजीपति और मजदूरों में समता असम्भव है।

उपर्युक्त उदाहरण से यह बात साफ हो जाती है कि समस्त मजदूरों में समता नहीं हो सकती। उनमें विज्ञ और अविज्ञ का भेद रहेगा। जब सब मजदूरों ही में समता नहीं हो सकती, तो फिर मार्क्स का यह चाहना कि पूंजीपतियों और मजदूरों में विषमताभेद न रह कर समता रहे 'खपुष्प" आकाश के फूलों की प्राप्ति की इच्छा करने के सदृश है। यह बात याद रखनी चाहिए कि मजदूरों में विषमता उनकी योग्यता,और अयोग्यता

---

offer them more care and attention, let us encourage them to work for us......a number of comrades think that only communists should be appointed in leading positions in our factories This is why often remove capable and efficient non party workers putting in their place numbers of the Communist party, *although they are* less capable and less efficient. I need not say that there is nothing more stupid or more reactionary than such a *policy. It is quite unnecessary to prove* that by such a policy the communist party can only be discredited and non-party workers made hostile to our party. (The Daily Leader of Allahabad 8-8-1931)

के कारण है और इससे भी बढ़कर अन्तर पूंजीपतियों और मजदूरों में हुआ करता है। पूंजीपतियों की विशेषतायें ये हैं जिनका मजदूरों में प्रायः अभाव हुआ करता है —

१—पूंजीपतियों में मिल चलाने, उत्पन्न हुए माल के खपाने, माल खपाने के लिये संसार के बाजारों का ज्ञान रखने आदि की ऐसी अनेक योग्यतायें हैं जिनका श्रमजीवियों में प्रायः अभाव हुआ करता है।

२—मिल के पुरजों और मशीनों तथा भूमि और इमारत में लगाने आदि के लिए पर्याप्त धन उनके पास हुआ करता है जिसकी मजदूरों में प्रायः कमी हुआ करती है।

३ पूंजी रखने के कारण दुनिया के बाजारों में उनकी साख हुआ करती है जिसके आधार से वे कभी-कभी एक पैसा भी पेशगी न देकर लाखों रुपयों की मशीनें तथा अन्य चीजें जहां से चाहें मंगा लिया करते हैं। इस साख के लिए पूंजी का होना अनिवार्य है।

ये और इस प्रकार की अनेक छोटी-बड़ी बातें हैं जो पूंजी पतियों की विशेषतायें हैं और जो मजदूरों मे नहीं हुआ करती हैं। ऐसी हालत में उनमें समता नहीं हो सकती परन्तु इस समता न होने का अर्थ यह नहीं है और न कभी हो सकता है कि मजदूरो के सभ्यतापूर्वक निर्वाह के लिए वे मजदूरी न देवें। उन्हें काफी मजदूरी देनी चाहिए और उनके साथ भाई-बन्दी का व्यवहार करना चाहिए। उनके दुःख-सुख में शरीक होना चाहिए इत्यादि—

(३) उत्पत्ति के साधनों का मालिक समाज हो।

१—एक वर्गवादी ने[1] लिखा है कि धनोत्पत्ति का साधन भूमि आदि के रूप में प्रकृति (Nature) है और उसकी उत्पत्ति करने वाले मनुष्य हैं जो अपने परिश्रम से व्यक्त किया करते हैं। समस्त आर्थिक अभिव्यक्ति की तह में काम करने वाले यही नियम हैं। सम्पत्ति के संग्रह की मर्यादा यह है कि उपर्युक्त भांति जितना धन उत्पन्न होता है उसमें से जितना व्यय हो जाता है इन दोनों के अनन्तर सम्पत्तिवान् या पूंजीपति बना करता है। इस प्रकार एक और पूंजी संग्रह करके लोग पूंजी-पति बनते है और दूसरी ओर उनकी उत्पत्ति करने वाले मज-दूर भूखों मरते हैं। ऐसे पूंजीपति अनेक प्रकार के मनोरंजन में उस धन को व्यय करते है परन्तु भूखे मरने वालों की वे परवाह नही करते। इसका कारण और एक मात्र कारण, वर्गवादियों की दृष्टि में यह है कि जो मजदूर पैदावार करते हैं वे उस पैदावार के मालिक नहीं होते और इसीलिए उन्हें भूखों मरना पड़ता है।

२—एक व्यक्ति बहुत-सी भूमि प्राप्त कर लेता है अब वह जिन मजदूरों से उस भूमिमें काम कराता है उनको थोड़ी मज-दूरी देकर बाकी पैदावार अपने लिए रख लेता है। इस प्रकार धनसंग्रह करते-करते वह पूंजीपति बन जाता है। इसी कार्य-प्रणाली से धन की मनुष्य में समता नही रहती और यह कार्य-प्रणाली है जिससे धनी लोग मजदूरों को लूटा करते हैं। इसका कारण यह है कि उत्पत्ति के साधनों का स्वामित्व समाज का

---

1. Why socialism by J. P. Narain P. 8. to 19 –

नहीं अपितु व्यक्तियों का है। इसी आधार से वर्गवादी इच्छा करते हैं कि उत्पत्ति के साधनों का मालिक समाज हो।

३—एक वर्गवादी की दृष्टि से, इसके दो इलाज हैं। उनमें से पहला तो यह है,कि नये ढग से बिल्कुल नया समाज बनाया जावे और प्रत्येक व्यक्ति को उत्पत्ति के साधनों में से उतना ही भाग दिया जावे जिसे वह अपने परिश्रम और अपने हाथों से काम में ला सके। यदि यह इच्छा एक बार पूरी भी करदी जावे तो भी कौन कह सकता है कि व्यक्तियों में समता बनी रहेगी। एक उदाहरण से यह बात भली-भांति समझी जा सकेगी:—

एक उदाहरण

मुरादाबाद शहर में एक साहूकार की मृत्यु हुई। उसके दो पुत्र थे उसकी सात लाख की सम्पत्ति दोनो पुत्रों को आधी-आधी मिल गई। बड़ा भाई समझदार था उसने अपने पिता के कामों को जारी रखते हुये अपने को और भी अधिक धनवान् बना लिया परन्तु दूसरा भाई बे-समझ सा था। उसने जुए, अनाचार और विषयो के वशीभूत होकर गिनती के ३ वर्षों में अपनी सारी सम्पत्ति खोकर रोटियों का मुहताज हो गया। तब उसके बड़े भाई ने १५) मासिक उसे निर्वाह के लिये देना शुरू किया। उससे उसे रोटी मिलने लगी। मैं समता का कथन करने वालों से पूछता हूँ कि अब कितनी बार सम्पत्ति बराबर २ बांटी जायगी। एक बार तो इन दोनों भाईयों की सम्पत्ति बराबर हो गई थी परन्तु बराबर रह नहीं सकी, इसलिए कि मनुष्य की प्रकृति भिन्न-भिन्न हुआ करती है। एक कुछ चाहता है दूसरा कुछ, किस प्रकार कोई सारी दुनियां को एक ढंग से चला सकता है ?

दूसरा इलाज वही है जो वर्गवादी प्रस्तुत किया करते हैं

(३) उत्पत्ति के साधनों का मालिक समाज हो।

१—एक वर्गवादी ने[1] लिखा है कि धनोत्पत्ति का साधन भूमि आदि के रूप में प्रकृति (Nature) है और उसकी उत्पत्ति करने वाले मनुष्य हैं जो अपने परिश्रम से व्यक्त किया करते हैं। समस्त आर्थिक अभिव्यक्ति की तह में काम करने वाले यही नियम हैं। सम्पत्ति के संग्रह की मर्यादा यह है कि उपर्युक्त भांति जितना धन उत्पन्न होता है उसमें से जितना व्यय हो जाता है इन दोनों के अनन्तर सम्पत्तिवान् या पूंजीपति बना करता है। इस प्रकार एक ओर पूंजी संग्रह करके लोग पूंजी-पति बनते हैं और दूसरी ओर उनकी उत्पत्ति करने वाले मज-दूर भूखों मरते हैं। ऐसे पूंजीपति अनेक प्रकार के मनोरंजन में उस धन को व्यय करते हैं परन्तु भूखे मरने वालों की वे परवाह नहीं करते। इसका कारण और एक मात्र कारण, वर्गवादियों की दृष्टि में यह है कि जो मजदूर पैदावार करते हैं वे उस पैदावार के मालिक नहीं होते और इसीलिए उन्हें भूखों मरना पड़ता है।

२—एक व्यक्ति बहुत-सी भूमि प्राप्त कर लेता है अब वह जिन मजदूरों से उस भूमिमें काम कराता है उनको थोड़ी मज-दूरी देकर बाकी पैदावार अपने लिए रख लेता है। इस प्रकार धनसंग्रह करते-करते वह पूंजीपति बन जाता है। इसी कार्य-प्रणाली से धन की मनुष्य में समता नहीं रहती और यह कार्य-प्रणाली है जिससे धनी लोग मजदूरों को लूटा करते हैं। इसका कारण यह है कि उत्पत्ति के साधनों का स्वामित्व समाज का

---

1. Why socialism by J. P. Narain P. 8. to 19 --

नहीं अपितु व्यक्तियों का है। इसी आधार से वर्गवादी इच्छा करते हैं कि उत्पत्ति के साधनों का मालिक समाज हो।

३—एक वर्गवादी की दृष्टि से, इसके दो इलाज हैं। उनमें से पहला तो यह है कि नये ढंग से बिल्कुल नया समाज बनाया जावे और प्रत्येक व्यक्ति को उत्पत्ति के साधनों में से उतना ही भाग दिया जावे जिसे वह अपने परिश्रम और अपने हाथों से काम में ला सके। यदि यह इच्छा एक बार पूरी भी करदी जावे तो भी कौन कह सकता है कि व्यक्तियों में समता बनी रहेगी। एक उदाहरण से यह बात भली-भांति समझी जा सकेगी:—

एक उदाहरण

मुरादाबाद शहर में एक साहूकार की मृत्यु हुई। उसके दो पुत्र थे उसकी सात लाख की सम्पत्ति दोनों पुत्रों को आधी-आधी मिल गई। बड़ा भाई समझदार था उसने अपने पिता के कामों को जारी रखते हुये अपने को और भी अधिक धनवान् बना लिया परन्तु दूसरा भाई बे-समझ सा था। उसने जुए, अनाचार और विषयों के वशीभूत होकर गिनती के ३ वर्षों में अपनी सारी सम्पत्ति खोकर रोटियों का मुहताज हो गया। तब उसके बड़े भाई ने १५) मासिक उसे निर्वाह के लिये देना शुरू किया। उससे उसे रोटी मिलने लगी। मैं समता का कथन करने वालों से पूछता हूँ कि अब कितनी बार सम्पत्ति बराबर २ बांटी जायगी। एक बार तो इन दोनों भाईयों की सम्पत्ति बराबर हो गई थी परन्तु बराबर रह नहीं सकी, इसलिए कि मनुष्य की प्रकृति भिन्न-भिन्न हुआ करती है। एक कुछ चाहता है दूसरा कुछ, किस प्रकार कोई सारी दुनियां को एक ढंग से चला सकता है?

दूसरा इलाज वही है जो वर्गवादी प्रस्तुत किया करते हैं

अर्थात् उत्पत्ति के साधनों का मालिक व्यक्तियों को न रहने देना अपितु उन साधनों का मालिक समाज हो। यह चिकित्सा भी फलवती नहीं हो सकती, इसलिए कि यह पूर्णतया काम में नहीं आ सकती और न आने के योग्य ही है। कुछ एक बड़े २ काम जैसे रेलों का चलाना अथवा लोहे से सभी प्रकार की वस्तुएं—रेल की पटरी,गर्डर आदि बनाना अथवा रेल के इंजनों और मोटरों का बनाना अथवा युद्ध की सामग्री तय्यार करना आदि ऐसे काम हो सकते हैं जो राज्य द्वारा अथवा बड़ी-बड़ी कम्पनियों द्वारा बनाकर चलाए जा सकते हैं परन्तु प्रत्येक कार्य उसी प्रकार चलाया जावे यह सम्भव नही है। अनेक छोटे बड़े व्यवसाय है जो व्यक्तियों द्वारा चलाए जाते हैं और चलाए जा सकते हैं। जरूरत सिर्फ इतनी है कि मजदूरों की मजदूरी और काम के घण्टों का नियन्त्रण राज्य की ओर से हो। इसके लिए देश और काल को लक्ष्य में रखते हुए वैधानिक नियम बनाए जा सकते हैं। भूमि के सम्बन्ध में जिमीदारी की प्रथा अवश्य विचारणीय है।

(४) *जिमींदारी की प्रथा*

प्राचीन काल में इस देश में जिमीदारी प्रथा नही थी। किसी जगह भी हिन्दू राज्यप्रणाली सूचक ग्रन्थों में मेरे देखने में इस प्रथा का जिक्र नही आया। इस देश में पंजाब आदि अनेक प्रांत हैं जहां यह प्रथा अब भी नहीं है। इस देश में मुसलमानों से पूर्व कृषक वर्ग अपने पैदावार का नियत भाग साक्षात् राज्य कोश में दाखिल करते थे अथवा राज्य की ओर से नियत अधिकारियों को दिया करते थे। जब प्रत्येक व्यक्ति स्वय पैदावार उत्पन्न करके उसका *व्यय करने वाला होगा और प्रत्यय व्यय*

करने वाला स्वय उत्पादक भी होगा तो इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि कृपक अच्छी अवस्था में हो जावेंगे। इस समय की यह जिमींदारी प्रथा निकृष्ट रूप में, और अनेक जगह कृपकों पर अत्याचार का कारण बनी हुई है।

एक उदाहरण

मुझे स्मरण है कि एक प्रान्त में, शायद अब से २५-३० वर्ष पहले एक जिले के डिप्टी कमिश्नर ने, कृपकों की अवस्था के सुधार के प्रकरण में प्रकट किया था कि मामूली लगान के अतिरिक्त वहां के तअल्लुकेदार ५५ प्रकार के और टैक्स समय-समय पर अपने कृपकों से लिया करते हैं। कल्पना करो कि एक जिमींदार को मोटर खरीदना है तो वह मोटर के मूल्य को अपने कृपको पर बांट कर उनसे वह दाम वसूल कर लेगा। इस टैक्स का नाम मुटरखन, इसी प्रकार यदि विवाह आदि के अवसरो पर घृत की अधिक जरूरत है तो यह भी कृपकों से वसूल कर लिया जावेगा। इस टैक्स का नामहै घियावन। इसी प्रकार कपड़े की जरूरत की पूर्ति के टक्स को कपड़ावन कहते हैं। निष्कर्ष यह है कि तअल्लुकेदार लोग अपनी प्रत्येक असाधारण जरूरतो को इसी प्रकार के टैक्सों से पूरी कर लिया करते थे। इस दूषित प्रथा का एक दुष्परिणाम यह भी है कि जहां-२ यह प्रथा प्रचलित है वहां २ जिमीदारों और कृपकों की लगभग दो बिरादरियां बन गई हैं जो एक दूसरे से सर्वथा अलग-अलग सी होकर रहती है, और जिमींदार लोग कृपकों तथा निम्न श्रेणी के लोगों पर अनेक प्रकार के अत्याचार करते रहते है,इसलिये इस प्रथा का यथासम्भव शीघ्र दूर होना आवश्यक है। परन्तु जिमीदारी प्रथा के दूर हो जाने पर भी वर्गवादियों को यह नहीं समझना चाहिये कि समस्त कृपकों में

समता हो जावेगी, उनमें विषमता रहेगी और निश्चित रीति से रहेगी। रूस के कृषक इसके उदाहरण है। रूस भी भारत-वर्ष की तरह कृषिप्रधान देश है।

(५) रूस के कृषक

कृषकों के सम्बन्ध में लेनिन ने नियम बनाया कि उन्हें उपार्जित पैदावार में से अपनी जरूरत की पूर्ति के लिए अन्न रखकर बाकी को सरकारी भण्डार में दाखिल कर देना चाहिए। एक वर्ष तो इस नियम का पालन हुआ परन्तु वह भी आंशिक रीति से। दूसरे वर्ष कृषकों ने अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार ही भूमि को जोता बोया, बाकी को खाली पड़ा रहने दिया। फल इसका यह हुआ कि सरकारी भण्डार में कुछ भी दाखिल नही हुआ तो लेनिन को अपने नियम में परिवर्तन करना पड़ा। अब परिवर्तित नियमानुसार विधान किया गया कि जो कृषक चाहें अपने अपने खेत सोवियट को दे देवें और स्वय राज्य की मजदूरी करें उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति राज्य करेगा। उस नियम के अनुसार कुछ कृषक अपनी भूमि, रूस की सरकार के हवाले करके स्वय रूस के सम्मिलित परिवार में शामिल हो गए। बाकी अधिकांश कृषकों ने इसे स्वीकार नही किया और स्वयं अपनी-अपनी भूमियों के मालिक बने रहना चाहा। रूस की बोलशेविक सरकार को इसे स्वीकार करना पड़ा। अब रूस के कृषिकार्य्य करने वाले व्यक्ति ४ भागों में विभक्त हैं।

(१) गरीब कृषि का पेशा करने वाले, बिना भूमि वाले जिन्हें यहां बँटराकी (Batraki) कहते हैं।

(२) छोटे कृषक थोड़ी भूमि के मालिक जिन्हें बेंडन जँकी

(Badn jaki) कहते हैं। इनके पास साधन न होने से इन्हें अपनी भूमि सम्पन्न किसानों को लगान पर देनी पड़ती है।

(३) औसत दरजे के कृषक जिन्हें सिरोड़ जैकी (Seroed jaki) कहते हैं जो अपनी भूमि को स्वयं जोतते बोते है।

(४) सम्पन्न कृषक जो बहुत भूमि के मालिक हैं और जिन्हें कुलाकी (Kulaki) कहते है और जो मजदूरों को मजदूरी देकर खेती कराते हैं और स्वयं अमीरों की तरह से रहते हैं॥ इस प्रकार भूमि के सम्बन्ध में वर्गवाद का परीक्षण सफल नहीं हुआ। जिन लोगों ने अपनी-अपनी भूमि सरकार को दे दी है क्या वे इससे सन्तुष्ट हैं ? इस पर भी विचार करना चाहिये। सन् १९३० ई० में डाक्टर रवीन्द्रनाथ टैगोर रूस गये थे। उन्होंने सरकारी कर्मचारियों के माध्यम से उनसे प्रश्न किया कि वे अपनी भूमि सरकार को दे देने से सन्तुष्ट हैं? तो उन्होंने असन्तोष प्रकट किया था। वे प्रश्नोत्तर इस प्रकार हैं:—

TAGORE

I should like to know the opinion of some of the individual peasants who are there concerning the principle of private property and whether they regret their surrender of their individual farm holdings.

॥देखो Hindustan Times (Congress number 1942)

ANSWER

A number of them confessed that they entertained orthodox views on this subject, as the subject was not clear to their minds, still more of them were shy and embarrassed

अतः स्पष्ट है कि भूमि के सम्बन्ध में जो परीक्षण सोवियट रूस ने किये थे वे सब प्रकार से फेल हुए।

(६) पूंजी के सम्बन्ध में वर्गवाद के परीक्षण

ये परीक्षण भी सफल नहीं हुए। इसके सम्बन्ध में दो बातों पर विचार करने से विषय पर अच्छा खासा प्रकाश पड़ेगा:—

(१) वर्गवाद चाहता है कि निज की सम्पत्ति किसी के पास न रहे परन्तु कहा जा चुका है कि कृषकों के सम्बन्ध में सम्पत्ति न रखने के नियम को सोवियट रूस को शिथिल कर देना पड़ा। इसलिये जहां तक रूस के कृषक-संसार का सम्बन्ध है पूंजी सम्बन्धी परीक्षण भी फेल हुए। उनसे उनकी निजू सम्पत्ति पृथक् नही की जा सकी।

(२) मजदूरों के काम की मजदूरी अब तक नही थी उन्हें भोजनादि के लिये कार्ड मिल जाते थे जिसके द्वारा वे नियत होटलों में भोजन कर लेते थे। उन्हें मकान भी रहने के लिये सोवियट की ओर से दिया जाता था,उनके बच्चों के भी पालन-पोषण और शिक्षा का भार राज्य ही के जिम्मे होता था परन्तु इतना होने पर भी मजदूर काम बहुत थोड़ा करते थे, अधिक

(Modern Review of January, 1931.)

समय उनका वर्गवाद के नारों से (Slogans) के लगाने में खर्च होता था परन्तु जब पंचवर्षीय स्कीम की शुरुआत हुई तो मजदूरों पर सख्ती हुई कि 'काम करो या भूखे रहो' इसका स्वाभाविक फल यह होना था कि उनमें असन्तोष हुआ। इस संघर्षण का अंत इस प्रकार हुआ कि भोजनादि देने की उपर्युक्त पणाली एक दम बन्द करके पुराने और दुनिया भर में प्रचलित तरीके पर रूस को लौटना पड़ा और नियम हो गया कि काम करो और मजदूरी लो, इसके सिवा एक का दूसरे से कुछ सम्बन्ध नहीं। वी० एम० मोलोटोव चेयरमैन ने अपनी वक्तृता में जो सोवियत राज्य की मुख्य प्रबन्धक सभा की दूसरी बैठक में दी गई थी इस परिवर्तन का विस्तार के साथ वर्णन किया था।※ इस प्रकार जब मजदूर काम करके धन प्राप्त किया करेंगे तो वे अपनी पूंजी भी कुछ न कुछ बना सकेंगे।

※Vide r·port of the speech by V. M. Molotove chairman of the council of people's commissars, the second session of the central Executive committe of the U S. S. R on the new policy indicating to return to a monetary system on the lines in use in other civilised countries and the development of the wage system, published in the monthly "Review" by the U. S. S. R. Trade Delegation in Great-Britain.

— *Hindustan Times 23. 2. 1936.*

इन उद्धरणों से यह बात साफ तौर से प्रकट है कि जिन कृपकों ने अपनी भूमि सोवियट रूस को दे दी थी वे अंत में कृपक नहीं अपितु साधारण मजदूरी वाले कुली रह गये। डाक्टर टैगोर ने इस पर उपस्थित व्यक्तियों को सलाह दी थी कि दोनों के लिये इधर-उधर के किनारों को छोड़कर मध्य का मार्ग अपनाना अच्छा होगा अर्थात् लोग सम्पत्ति रखें परन्तु सीमा से अधिक नहीं और बाकी सम्पत्ति उपकार के कामों में खर्च होनी चाहिये।[1] प्रसन्नता है कि डाक्टर टैगोर की सलाह बेकार नहीं गई। रूस ने उस पर कुछ वर्षों के बाद अमल किया।

(७) रूस ने प्राईवेट प्रापर्टी रखने के पक्ष में नियम बना दिया

सोवियट रूस के राज नियम, में जो इस समय प्रचलित है, (ये १६३७ ई० में प्रचलित किये गये थे) एक धारा इस प्रकार है:—'समस्त निजी सम्पत्ति की रक्षा का, जो मजदूरी आदि के द्वारा, एकत्र की जाती है उत्तरदायित्व सोवियट राज्य लेता है। मजदूरी लेकर काम करने का अधिकार प्रत्येक रूसवासी को है। इसकी रक्षा की भी जिम्मेदारी सोवियट गवर्नमेन्ट पर है जिसकी काम करने की पद्धति, समाजवाद के आर्थिक सुधार के नियमानुसार निश्चित हुई है

---

(1) डाक्टर टैगोर के शब्द ये थे:—That private property should be permitted to remain but that the limits of its' strictly individual enjoyment should be fixed, any surplus beyond this limit should be available for public utilization.

—Modern Review January 1931

और जिसका करना प्रत्येक रूस के नागरिक के लिये अनिवार्य है काम की मजदूरी कामकी उपयोगितानुसार नियत होगी।"[1] यह नियम कि प्रत्येक रूस के रहने वाले को अन्न पैदा करने और उसको सम्पत्ति के रूप में निजी तौर पर रखने का अधिकार है, साफ तौर से प्रकट कर रहा है कि कार्लमार्क्स की स्कीम कि किसी के पास निजी सम्पत्ति नहीं होनी चाहिये, सोवियट रूस के व्यावहारिक जीवन में अव्यवहार्य सिद्ध हुई। इसलिये वर्गवादियों को चाहिये कि अब आगे इस स्कीम को व्यवहार में लाने का ढोल न पीटा करें।

(८) एक और कठिनता

निजी सम्पत्ति न रखने के अर्थ यह हैं कि प्रत्येक व्यक्ति पूर्णतया समाज का बन्दी बने और अपने व्यक्तित्व को नष्ट कर डाले, जैसा कि मेजर ओलिवर स्टैनली (Major Oliver Stanely) इंगलैण्ड के ट्रान्सपोर्ट के मिनिस्टर ने अक्टोबर १९३३ ई० में अपनी एक वक्तृता में, जो मानचेस्टर में दी

---

(1) अंग्रेजी के शब्द ये हैं:—All privats property accuring as the result of earnings is guaranteed state protection. The right to work is also guaranteed as a result of the planned Soviatist economy and is made obligatory for every citizen, with wages to be adjusted according to the importance of the job.

—*Hindustan Times*

गई थी, कहा था।[1] इसी बात को लेनिन ने भी इस प्रकार कहा कि 'समस्त समाज एक कार्यालय या एक फैक्टरी हो जावेगा।[2] ये और इस प्रकार की बातें करने में तो भली मालूम होती हैं परन्तु व्यवहार में आने से इनका कोई मूल्य नही रहता। लेनिन के इस नियम को उसके उत्तराधिकारी स्टैलिन ने समाप्त कर दिया जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है समस्त रूस न तो एक कार्यालय बना और न ही एक फैक्टरी, किन्तु २१ राज्यों मे विभक्त हो गया, जिसकी घोषणा स्टैलिन ने इसी युद्ध के बीच १९४४ ई० में की थी।

(६) डाक्टर भगवानदास और निज सम्पत्ति

डाक्टर भगवानदास ने एक जगह लिखा है कि मनुष्य की नैसर्गिक इच्छा तीन बातों के लिये हुआ करतीहैः—(१) आत्म-रक्षा के लिये भोजन की इच्छा, (२) आत्म-विस्तार के लिये निज सम्पत्ति की इच्छा तथा (३) परिवार वृद्धि के लिये पत्नी की इच्छा। जब तक प्राकृतिक जगत् के पथ का पथिक रहता है तब तक शरीरस्थ आत्मा से, डाक्टर की सम्मति में, इन

---

(1) स्टैनसी के शब्द ये हैं:—The communist solution seems simple but means the complete subordination of the individual to the state and the destruction of his personality.

(2) लेनिन के कथन के अंग्रेजी शब्द ये हैं:—The whole of society will become one office and one factory.

— Humanity uprooted by M Hundus P. 64

तीनों का सम्बन्ध रहा करता है,इन्हें कोई दूर नहीं कर सकता।[1] डाक्टर का कहना यह भी है कि ये तीनों मौलिक इच्छायें, समस्त जातियों के साहित्य और समस्त मजहबों में जो आज मौजूद हैं, स्वीकार की गई हैं।[2]

(१०) वैदिक दृष्टिकोण

सांख्यदर्शन के आधार से यह बात कही जाती है कि यह जगत् प्रकृति से बना है। जगत् के बनने का क्रम प्रकृति के सूक्ष्म से स्थूल होने की ओर चलता है। पहले दरजे पर प्रकृति स्थूल होकर महत्तत्व के रूप में परिवर्तित हुआ करती है। यहां तक प्रकृति और उसका विकार महत्तत्व में समष्टिपन से रहा करता है, दूसरे दरजे पर महत्तत्व स्थूल होकर अहंकार का रूप धारण किया करता है। प्रकृति क्रमपूर्वक स्थूल होकर जब अहंकार के रूप में आ जाती है तब प्रकृति और उसके विकार का समष्टिपन. इस अहंकार वाले परिवर्तित रूप में बाकी नहीं रहा करता अहंकार से व्यत्तित्व का क्रम आरम्भ हो जाता है। अहंका पचतन्मात्रा का रूप ग्रहण करके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की शक्ल में आ जाता है। इन्हें सूक्ष्मभूत कहा जाता है। इनसे १० इन्द्रिय और मन के रूप में प्रकृति आ जाती है। यहां सूक्ष्मभूतों का क्रम समाप्त हो जाता है, इसके बाद इन सूक्ष्म भूतों के और

1— Ancient V. Modern Socialism by Dr. Bhagawan Dass P. 2I.

2— The Essential unity of all religions by Bhagawan Das P. 140-152.

अधिक स्थूल होने से आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी स्थूल भूत बनकर उनसे जगत् के समस्त पदार्थ बन जाया करते हैं। सांख्यकार के दिये इस विवरण से स्पष्ट है कि यह जगत् अहंकार की सृष्टि है और यह सृष्टि स्थित भी अहंकार ही से रहा करती है। माता अपने बच्चे की, साहूकार अपनी सम्पत्ति की और राजा अपने देश की रक्षा उसी हालत में किया करता है जब उसके साथ अपनेपन का नाता जोड़ लिया करता है। जब मैं कहता हूँ (मैं I) तो इसका अर्थ अहंता - मेरा व्यक्तित्व-मेरी (Individuality) हुआ करता है। इसी से ममता बनती है। जिसका अभिप्राय यह है कि मेरे भीतर इच्छा उत्पन्न हुई कि मेरे लिये एक पृथक् घर चाहिये, सुखपूर्वक उस घर में रहने के साधन तथा निज सम्पत्ति भी चाहिए। जब तक मनुष्य सांसारिक भोग (अभ्युदय) की इच्छा रखता है उसके लिये उपर्युक्त वस्तुओं का होना अनिवार्य है। और जब वह वानप्रस्थ (Anchorite) या संन्यासी (Renunciant) हो कर अभ्युदय से हट कर निःश्रेयस अथवा लोकोन्नति से आगे बढ़कर परलोकोन्नति की ओर चलता है तब वह इस ममता को छोड़ कर अपने और परमेश्वर के बीच वाले परदे—अहंकार को हटा दिया करता है। परन्तु जैसा कहा गया है जगत् में रहते हुए कोई ममता छोड़कर निज सम्पत्ति की इच्छा न करे अथवा उसकी आवश्यकता को अनुभव न करे यह असम्भव है। अतः स्पष्ट है कि जो मनुष्य निज सम्पत्ति के रखने के विरुद्ध जिहाद किया करते हैं मानो वे असम्भव को सम्भव करने की चेष्टा करते हैं। वेद के आधार से मनु की आश्रम-व्यवस्था प्रकट करती है कि इस देश के ऋषियों और मुनियों ने—

(१) असीमस्पर्धा (Unlimited competition) और बलात् सहयोग (Enforced co-operation)

(२) स्वार्थ—आत्मलाभ (Egoism) और समाजलाभ (Altruism devotion to Humanity)

(३) व्यक्तिवाद (Individualism) और समाजवाद (Socialism)

(४) पूरी स्वतन्त्रता (All liberty) पूरी परतन्त्रता (No liberty)

(५) केवल निज व्यवसाय (Only private enter prize) और केवल राज प्रबन्ध (Only state Management)

(६) अणुकराज्य (Too little Govt.) और अतिशय राज्य (Too much Govt) के मध्य बीच का रास्ता निकाल रक्खा था। और इसी मध्य पथ के वे पथिक थे। न वे सीमा की एक ओर और न सीमा की दूसरी ओर रहने के इच्छुक थे। ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रम में अभ्युदय के मार्ग पर चलते हुए संसार से अधिक से अधिक लाभ उठाते थे। सन्तान भी पैदा करते थे, धन भी सग्रह करते थे, अपना राज्य भी रखते थे, राज्य की रक्षार्थ सेना भी रहती थी, परन्तु आगे के अन्य दो आश्रमों (वानप्रस्थ और संन्यास) में वे समस्त सांसारिक अभ्युदय के साधनों का त्याग कर देते थे।

इस आश्रम-व्यवस्था में लोक और परलोक सबका उपभोग आ जाता है परन्तु मार्क्स ने इतिहास को केवल भौतिकवाद प्रतिपादक मानकर आत्मवाद और परलोक सब को नष्ट करने

की असम्भव इच्छा की थी, परन्तु इसके लिये उसे अन्त में पछताना ही पड़ा, जैसा कि कहा जा चुका है।

(११) गणीभूत क्षेत्र

यह तो सम्भव नहीं कि समस्त उत्पत्ति के साधनों का मालिक राज्य या समाज ही हो, जैसा ऊपर कहा जा चुका है परन्तु पैदावार अधिक होसके, इसके लिये बड़े-बड़े गणीभूत क्षेत्रों (*collective farms*) की जरूरत होगी जैसे अमरीका में हैं और जिनका अनुकरण सोवियत रूस ने भी किया है। मिलें सबसे अधिक माल अमरीका में पैदा करती हैं। १९१४ ई० में अमेरिका के बनाये हुए माल का मूल्य २४ अरब २५ करोड़ डालर था परन्तु १९२७ ई० में पैदावार बढ़कर ६२ अरब ७० करोड़ डालर का हो गया। माल के तैयार करने में अमेरिका इतने वेग के साथ आगे बढ़ रहा है कि एक वर्ष की अमरीका की पैदावार इंग्लैण्ड, जरमनी, इटली और बेलजियम को मिलाकर इनके एक वर्ष की पैदावार से दुगनी होती है। इसलिये स्वाभाविक है कि अब आगे दुनियां का एकाधिपति अमरीका होगा। अमरीका चाहता है कि प्रत्येक मजदूर पूंजीपति बन जावे, इसके विरुद्ध रूस चाहता है कि प्रत्येक पूंजीपति मजदूर बन जावे। अमरीका में मजदूरों की जरूरत न होने देने के लिये मशीनों का रिवाज बढ़ता जाता है। खेत में अनाज की बोरियां पहुंचा देना मजदूरों का काम है। उसके बाद बोना, फस्ल काटना, अनाज निकालना, पीसना, और पीसकर डबल रोटी बना देना, ये सब काम मशीनों से होता है। इन कामों में आदमी को हाथ लगाने की जरूरत नहीं पड़ती। रूस ने भी इसी

---

(1) The Modern Review 1930 P. 661.

प्रकार की मशीनें और मिलें रूस में लगानी शुरू कर दी हैं। पैदावार बढ़ाने के लिये मशीनों की उपयोगिता है परन्तु छोटे-छोटे खेतों में मशीनें काम नहीं कर सकती। इसलिये यहां भी सहयोग की प्रक्रिया प्रचलित करके बड़े-बड़े गणीभूत क्षेत्र तैयार करने होंगे, जिनमें मशीनों से काम लिया जावे। देश की बढ़ती हुई आबादी के लिये अन्न भी अधिक चाहिये और अन्न की पैदावार बढ़ाने के लिये मशीनों से काम लेना अनिवार्य सा ही प्रतीत हो रहा है।

(४) समाज श्रेणीरहित हो।

(१) समाज श्रेणीरहित हो

मार्क्स की स्कीम का एक अंग यह भी है कि समाज श्रेणी रहित हो। परन्तु यह इच्छा असम्भव है कि पूरी हो सके। जब तक प्रकृति के अंगों सत् रज और तम में समता रहती है जगत् नहीं बनता, प्रलय रहा करती है। इनमें विषमता आने ही से जगत् बना करता है। इसलिये विषमता तो प्राणियों के स्वभाव में सम्मिलित है। इसके दूर करने की इच्छा का अर्थ मनुष्य स्वभाव को बदलना है और यह सम्भव नहीं।

(२) समाज श्रेणीरहित नहीं हो सकता

रूस में वर्गवाद के परीक्षण हुये और परीक्षणों ने सिद्ध कर दिया कि समाज श्रेणीरहित नहीं बन सकता। इस समय रूस में इतनी श्रेणियां हैं:—

(१) वर्गवादी, जिनके नामांकित हैं और जिनमें [illegible] समस्त राज्याधिकारी और लाल फौज के आदमी [illegible]

(२) मजदूर वर्ग, जिनमें दोनों प्रकार के म[illegible]

आदि तथा शारीरिक परिश्रम करने वाले, शामिल हैं।

(३) कृषकों के ४ वर्ग, जिनका इससे पहले उल्लेख हो चुका है।

(४) व्यापारियों के अनेक वर्ग।

इनके लिये यह नहीं कहा जासकता कि इन्होंने पारिवारिक जीवन, सम्पत्ति की इच्छा अथवा धार्मिक नियमों का पालन करना छोड़ दिया है। उपर्युक्त नियमों के पालन करने के रूप अवश्य बदल गए हैं। यदि आबादी पर दृष्टि डाली जावे तो जो वर्गवादी है और प्रायः शहरों में रहते हैं, उनकी जनसंख्या केवल तीन मिलियन अर्थात् ३० लाख है। यह संख्या रूस की जन संख्या—*ग्यारह करोड़ ६० लाख का केवल ५०वां भाग* अथवा दो फीसदी है। इनके सिवा वे मजदूर जिन्होने सोवियत के वर्गवादी नियमों को, कम से कम मौखिक रीति से मान लिया है उनकी जनसंख्या २७ मिलियन या दो करोड़ सत्तर लाख अर्थात् कुल जनसंख्या का लगभग ¼ भाग है। इसको छोड़कर बाकी आबादी अवर्गवादियों की ही है। राज्याधिकार प्राप्त होने पर भी समस्त रूस वर्गवादी नहीं बन सका जबकि वर्गवादी बनाने के लिए नागरिकों पर अनेक अत्याचार किए गए, जिनका थोड़ा सा विवरण इस प्रकार है:—

(१) १६३३ ई० तक सोवियट के शासकों ने,अपने सिद्धांतों के स्वीकार न करने कारण निम्न संख्या में स्त्री पुरुषों का वध करा डाला था:—

३१ लार्ड विशप, १५६० पादरी, २४५८५ वकील और मजिस्ट्रेट ७६६०१ जज तथा अन्य कानूनी अफसर, १६२६७ अध्यापक और विद्यार्थी, ६५८६० अमीर और धनवान् व्यक्ति,

५६३४० सिविल और मिलिट्री आफीसर, २ लाख मजदूर, ३ लाख, राजनैतिक कार्यकर्ता, ६ लाख किसान। इनके सिवा, बहुत से लोगों को दण्ड देकर साईबेरिया भेज दिया गया, २½ लाख रूस छोड़कर बाहर चले गये। ५००० गिरजाघर गिरा दिये गये।[1]

(२) ५ दिसम्बर १६३४ ई०, सोवियट रूस ने अपनी सरकार के ६६ अफसरों को मत-भेद रखने के कारण एक साथ फांसी के तख्ते पर लटकवा दिया।[2]

(३) आर्थिक विषमता

रूसमें न केवल श्रेणी की विषमता है अपितु आर्थिक विषमता का भी वहां पर्याप्त दौर है। जो वर्गवादी और प्रोलेटैरियन्स (वर्गवादी मजदूर है उनके वेतनों में भारी अन्तर है। कुछ एक को केवल ४५ रोविल मासिक और कुछ एक को १५००) रोविल मासिक और अन्यों को इनके बीच की संख्या में मासिक वेतन मिलता है। इस समय भी ग्रन्थ लेखक और नाटक के रचयिता रूस के अधिक से अधिक धनवानों में गिने जाते है।[3] अस्तु, जब वेतनों में इतना अन्तर है फिर कोई कैसे कह सकता है कि सोवियत रूस में आर्थिक विषमता नहीं। आर्थिक विषमता होने पर किस प्रकार कोई उसे श्रेणीरहित समाज कह सकता है ? उपर्युक्त घटनाओं पर दृष्टिपात करने के बाद किसी को भी इस परिणाम पर पहुँचने में कठिनता नहीं हो सकती कि मार्क्स का श्रेणीरहित समाज बनाने का विचार सर्वथा अव्यवहार्य सिद्ध होता है।

---

(1) Reformer Lahore Dated 11-3-1933.
(2) Modern Review January 1935 P. 133.
(3) Twelve studies in Russia P. 70—71.

छठा अध्याय

(५) राज्य पर अधिकार करना आवश्यक है।

(१) राज्याधिकार

प्राय: वर्गवादियों का यह सिद्धांत रहा है कि समाज के पुनर्निमाण के लिये राज्यबल अनिवार्य है। इस लिये उस बल की प्राप्ति के लिये सभी प्रकारके कार्यों का करना जिनमें क्रांति भी शामिल है, आवश्यक है बैक्यूनिन (Bakunin) को प्रत्येक प्रकार के शासन से, चाहे वह चर्च का हो, राज्य का अथवा विज्ञान का, घृणा थी। इसीलिये उसे क्रान्ति में विश्वास था। वह चाहता था कि दलित श्रेणी के लोग क्रांति करें परन्तु उन के अगुआ कुछ एक ऐसे अविदित और क्रूर वीर व्यक्ति हों जो क्रान्ति का मूल्य समझते हों। उसकी दृष्टि में राज्य अतिनिन्द्य, कुटिलता पूर्ण और एक ऐसी संस्था है जो मनुष्यत्व को नष्ट करना चाहती है, इसलिये कि उसकी बागडोर निकृष्टतम व्यक्तियों के हाथ में होती है। इसलिये जब तक वह (राज्य) नष्ट न किया जा सके तब तक उसका बहिष्कार तो अवश्य करना ही चाहिये।[1]

---

(1) A. History of socialism by Sally Graves P.69-70
बैक्यूनिन एक वर्गवादी था जो साइबेरिया से भाग कर राज्य के विरुद्ध कार्य करने में लगा हुआ था। इसका कार्यक्षेत्र रूस, स्पेन और इटली था।

फ्रांस में, जर्मन से हार जाने के बाद, वर्गवाद कुचल दिया गया था। मार्क्स ने इस (वर्गवाद की) असफलता से दो आवश्यक पाठ सीखे: –(१) मजदूरों को, जब वे राज्य सत्ता पर अधिकार प्राप्त कर लें तो चाहिये कि समस्त राज्य के अन्तर्गत अपने कानून प्रचलित कर दें जिससे उनका राज्य दृढ़ हो जावे। (२) सफल क्रान्ति के लिये बड़े-बड़े नगरों ही को नहीं बल्कि छोटे २ नगरों और ग्रामों की भी सहायता अपेक्षित है।[1] अस्तु, फ्रांस की उपर्युक्त हार के और भी, बहुत दूर तक प्रभाव डालने वाले, परिणाम निकले। फ्रांस के वर्गवाद का तो खात्मा हुआ ही था कि जर्मन में भी वर्गवादियों के दो नेता बेबल (Babal) और लीबनेच (Liebknecht) जेल में डाल दिये गये। इनका अपराध यह था कि जर्मनों ने फ्रांस के प्रान्त ऐलस लोरेन (Alsace-Lorraine) को फ्रांस की हार के बाद अपने देश में शामिल कर लिया था, इस सम्बन्ध में इन नेताओं ने प्रोटेस्ट किया था। इंग्लैण्ड पर इस युद्ध का प्रभाव यह पड़ा कि उस देश का व्यापार बहुत बढ़ गया और कारखानों की अच्छी खासी उन्नति हुई। इसका फल यह हुआ कि श्रमजीवियों की मजदूरी में अच्छी खासी वृद्धि हुई। फलस्वरूप वहां के मजदूरों ने क्रान्ति का विचार छोड़ दिया और वे भविष्य में बहुत अहतियात से काम करने लगे। इससे वहां के व्यापार संघों की भी अच्छी खासी उन्नति हुई। इससे इंग्लैण्ड में मार्क्स का मान बढ़ने लगा। संक्षिप्त रीति से इसका विवरण इस प्रकार है: –

(1) History of Socialism P. 71&72.

इंग्लैण्ड और मार्क्सवाद

चार्टरवाद की असफलता के २० वर्ष बाद लिव…

का प्रभाव इग्लैण्ड में बढ़ा, उनके आर्थिक समस्या से सम्बन्धित विचारों को, वहां के निवासियों ने अपनाया। व्यापार संघों को भी व्यापार स्वातन्त्र्य से लाभ पहुंचा। ग्लेडस्टोन को अपनी राजनैतिक शक्ति का पूरा ज्ञान था। उसने शान्ति और वैधानिक साधनों से उससे काम लिया। व्यापार संघ उसके समर्थक थे ओडगर (Odgar) और क्रेमर (Cremer) ने मजदूर संघों को लिबरल पार्टी से पृथक् करने का कभी विचार भी नहीं किया। १८५१ ई० में इजीनियरों,मिल के उच्च कर्मचारियों लुहार और नमूना बनाने वालों ने मिलकर एक संगठन बनाया जिसका नाम उन्होंने इंजीनियरों का सम्मिलित संघ (Amalgamated Society of Engineers) रक्खा। यह संघ पूंजीपतियों के लिये एक प्रकार का चैलेन्ज था। १८५२ ई० में जब इस संघ के सदस्यों को पकड़ा गया तो ईसाई संघों ने भी इस संघ का समर्थन किया। इससे इस संघ का प्रभाव और बढ़ गया। इस संघ का उद्देश्य श्रमनियन्त्रण था। १८७१ ई० में "व्यापार सघ आईन" के पास होने से इस संघ की राह में जो रुकावटें थी वे अधिकतर दूर हो गईं। इस बीचमें व्यापार स्वातन्त्र्य के नियम को लोगों ने सन्देह की दृष्टि से देखना शुरू किया। इसके विरुद्ध एक स्कूल बना। रसकिन और किंगसले ने इस स्कूल की ओर से अनेक लेख लिखे। अमरीका और जर्मन ने इस व्यापार-स्वातन्त्र्य के नियम से लाभ उठा कर व्यापार में इग्लैड से स्पर्धा की। फल उसका इग्लैण्ड के लिये खतरनाक

हुआ। इन हालात में कुछ एक मजदूर संघ लिवरल पार्टी से पृथक् हो गये। इसी बीच मे एक स्कूल बना जिसने भूमि जातीय सम्पत्ति बनाने का सुधार चाहा। जान स्टुआर्ट मिल की, इसी उद्देश्य से बनाई एक सस्था में जान मौरले, जार्ज अडगर (George Adgar) सर चारलिस डिल्की (Sir Charles Dilke) और रैंडल क्रेमर (Randall Cremer जैसे प्रभावशाली व्यक्ति भी शामिल हो गये। जो लोग इस भूमि सुधार के पक्ष में थे उन्होंने चाहा कि समाजवाद के अन्य नियमों को भी स्वीकार करें और सोशल डेमोक्रेटिक फैडेशन (Social Democratic federation) में भी शामिल हो जावें। यह फैडेशन इससे पहले हेनरी हिन्दमैंन (Hanry Hyndman) द्वारा स्थापित डेमोक्रेटिक फैडेशन का बचा कुचा भाग था। और भी इस प्रकार की छोटी-मोटी सस्थायें इग्लैंड में बनती रही परन्तु उनका कुछ महत्त्व नही था। यह सोशल डेमोक्रेटिक सघ भी कोई बड़ा महत्त्वपूर्ण संघ नही बन सका। इसका रूप अन्त में यह हो गया कि इसे "अफसरोत्पादक संघ" (Officer Producing Unit) समझा जाने लगा जो नवीन यूनियनिज्म (New unionism) अथवा स्वतन्त्र लेवर पार्टी के पक्ष का समर्थन करने वाले होते थे। इन हालात् में लोगों का ध्यान मार्क्स की ओर गया और उसके लेख पढ़े जाने लगे। देशी व्यापार संघ (The Native trade union movement) की तहरीक १८८० ई० में हुई, डाक्टर हड़ताल से प्रभावशाली होने लगे। इसी तहरीकको हर्वट स्पेन्सर और अरनोल्ड टौइनबी (Arnold Toynbee) के स्थापित समाजवाद के नवीन ऐतिहासिक स्कूल (The New "Historical" School of Sociology) से पुष्टि मिली। इस स्कूल ने पूरा यत्न किया कि :

क्रमशः भाइन बनवाने में पूरी-पूरी सहायता दे। इस स्कूल में प्रोपेगेण्डा करने वाले मुख्यतया सिडनी वेब (Sydney Wabb) बरनार्डशा (Bernard Shaw) और सिडनी ओलिवर (Sydney Oliver)थे। इस बीच में हुई दक्षिण अफ्रीका की लड़ाई ने लिबरल पार्टीकी कमर तोड़दी और यहीं से वर्तमान लेबर पार्टी का जन्म हुआ समझा जाता है। इस समय की मुख्यतया दो बातें हैं जिनका सम्बन्ध लेबर पार्टी के उत्थान से है:—

(१) फेबियन सोसायटी का लेबर पार्टी पर प्रभाव।

(२) तथा लिबरल और लेबर पार्टी का पारस्परिक सम्बन्ध १९०६ ई० के बाद जिसके परिणाम स्वरूप एक रणोद्यत सम्प्रदाय बन गया।

फेबियन सोसायटी और मार्क्स

इस फेबियन सोसायटी ने अपने प्रकाशित फेबियन पुस्तकों द्वारा मार्क्स की आलोचना करते हुए प्रकट किया है: - सिडनी वेब का कथन है कि "मार्क्स अपने समय के लिए उपयोगी व्यक्ति था और उसने अपने समय की अवस्थायें आश्चर्यजनक स्पष्टता के साथ वर्णन की थीं परन्तु १८६१ और १८८५ ई. के मध्य इंग्लैण्ड का परिवर्तन युग था—इस परिवर्तन का मुख्य कारण व्यापार संघों का संगठन हुआ जिसके द्वारा मजदूर श्रेणियों की सत्ता को राज्य ने असन्दिग्ध रीति से स्वीकार किया। १८६७ ई० के बाद ग्रेट ब्रिटेन प्रजातन्त्र शासन के रूप में परिवर्तित हो गया। ऐसा हो जाने पर श्रमजीवियों को अवसर मिल गया कि कानून बनाने वाले सघ पर साक्षात् रीति से

अपना प्रभाव डाल सकें। साथ ही राज्य ने भी स्वयमेव अपनी मनोवृत्ति को वदला और अब वह सघ केवल पूंजीपतियों का संघ नही रह गया था। उसकी प्रवृत्ति सामाजिक सुधार की ओर भी हो चली थी। नयी परिस्थिति का तकाजा था कि नवीन राजनीति के तरीके काम मे लाए जावे और उसका फल लेवर गवर्नमेट बन जाना हो सकता है। जिस प्रजातन्त्र शासन के नियम न केवल पार्लियामेट के काम आवें किन्तु उनका प्रयोग कला-कौशलीय कारखानो मे भी हो सके।

इंग्लैंण्ड में मार्क्सवाद क्यों असफल हुआ ?

मार्क्स का श्रेणी संघर्षणवाद उसके मूल्यातिरिक्तवाद से निकला हुआ समझना तर्कसिद्ध था। इसी प्रकार वेब का सामाजिक विकासवाद उसके राजस्ववाद का एक दूसरा रूप था, यह राजस्ववाद "मिल" के भूमि सुधारवाद से उत्पन्न माना जाता था। अस्तु इन परिवर्तनो से इग्लेंण्ड के श्रमजीवियों पर निम्न प्रभाव पड़े:—

(१) राज्य पर अधिकार प्राप्त करने के लिये उस प्रकार की क्रांति की जरूरत नहीं, जिसका मार्क्स ने अपने लेखो में संकेत किया है।

(२) उस प्रकार के श्रेणी संघर्षण भी अनावश्यक है जिनका मार्क्स पक्षपाती था।

(३) निज सम्पत्ति न रखने पर भी बल देने की जरूरत नही क्योंकि उसके विना किसी का भी काम नहीं चल सकता था।

(४) इन और इसी प्रकार के अन्य कारणों से मार्क्सवाद की अपेक्षा इंग्लैण्ड के मजदूरों की दृष्टि में उन देश में प्रचलित प्रजातन्त्र शासनवाद अधिक उपयोगी, अधिक शान्तिप्रद और देशवासियों में समन्वय रखने का अधिक साधक हो सकता

है। इसलिए उनमें मार्क्सवाद के लिए वह श्रद्धा नहीं रही जो इस समय उन्हें अपने प्रजातन्त्र शासनवाद में है।

(५ मजदूरी मे समता का भाव भी इग्लैण्ड में उन्नति नहीं कर सका, उनकी दृष्टि में विषमता का रहना अनिवार्य है। अधिक कुशल मजदूरों के लिए आवश्यक है कि उनको अधिक मजदूरी मिलने के सिवा योग्यता की मजदूरी (Rent of ability) भी मिले।

(६) इंग्लैण्ड में इसीलिए राजनैतिक शक्ति प्राप्ति का संघर्षण मजदूरों और पूंजीपतियों में नहीं रहा, अपितु बहुपक्ष प्राप्ति के संघर्ष के रूप में परिवर्तित हो गया।

(७) जो शारीरिक परिश्रम करते हैं और जो मानसिक परिश्रम करके नये २ वैज्ञानिक आविष्कार करते हैं और जो खोजों के कार्यों में लगे रहते हैं और जो कला तथा राज्य का सगठन करते है इन सब में इनकी योग्यतानुसार ही उपज का विभाजन होना चाहिए। राज्य का कर्त्तव्य है कि उपज का कुछ अंश जनता के लाभार्थ कर के रूप मे लेवे, और कुछ नगर पालिका (Municipality के कार्यों के लिए और कुछ जातीय सम्पत्ति बनाने के लिए लेवे। शेष को उपर्युक्त भांति विभाजित कर देवें।

(८) मार्क्सवाद की अपेक्षा फैबियनवाद की विशेषता ब्रिटिश लेबर पार्टी की दृष्टि से यह थी कि इस दूसरे वाद के समस्त कार्य वैधानिक ढंग से चलते हैं और वे सब देश के प्रचलित संगठन द्वारा काम में आते और आ सकते हैं। इसके अतिरिक्त इसी के बदौलत मध्यम श्रेणी की जनता का प्रवेश लेबर पार्टी में हुआ और लेबर पार्टी इस प्रकार शक्तिशालिनी संस्था बन गई।

(६) जो सुधार लिवरल पार्टी के नेताओं लोइड् जार्ज आदि ने किये वे सब भी इसी फेबियन सोसायटीके नियमोंके आधार से किए गए थे और इसी के आधार पर बुढ़ापे के पेन्शन (Old Age Pension Act 1908) खानों में काम करने वाले मजदूरों के लिए ८ घण्टे काम का कानून (Miners Eight hours 1908) कोयले का कानून (Coal Mines act आदि अनेक सुधार के आईन बने जिनसे मजदूरों का बड़ा उपकार हुआ।

सातवां अध्याय

मार्क्स के शेष सिद्धान्त

मार्क्स की सात बातो में से दो शेष रहती है उन पर इस अध्याय में विचार किया जायेगा ।

सार्वत्रिक सम्मत्यधिकार

उन दो में से एक के द्वारा मार्क्स ने चाहा है कि सभी नगर निवासी सम्मति देने के अधिकारी माने जावें अर्थात् समस्त देशवासियों को राज्य संस्था के चुनाव आदि में सम्मति देने का अधिकार होना चाहिए । सिद्धान्त के रूप में तो इसे प्रायः सभी मानते हैं । परन्तु इसे क्रियात्मक रूप देने में कुछ कठिनताएं हो सकती है । स्विटजरलैण्ड जो शायद अम्बाला डिवीजन से कुछ छोटा ही होगा, वहां प्रत्येक व्यक्ति को सम्मत्यधिकार है । बडी बड़ी आबादी के देशों मे जैसे चीन और हिन्दुस्तान है अवश्य कठिनता पड़ेगी परन्तु सिद्धान्त रूप मे यह सिद्धान्त सर्वसम्मत है । इसलिए इस पर अधिक विचार क ने की जरूरत नही ।

मजदूरों की आर्थिक अवस्था ठीक होनी चाहिये ।

मार्क्स ने इस विषय पर विचार करते हुए इस सुधार के प्रसग में भृत्यातिरिक्तवाद की चर्चा की है। इस वाद का अभिप्राय यह है कि उपज मे मजदूरी देने के बाद जो बाकी

रहता है उसे भृत्यातिरिक्तवाद या Theory of Surplus Value कहा जाता है। मार्क्स का अभिप्राय इस वाद के यहां प्रकट करने से यह है कि यह चाहता है कि इस प्रकार जो बचे, वह कृषक या मजदूर को मिलना चाहिए,मिल या भूमि मालिक जो उसे हड़प कर लेते है, वे कृषकों या मजदूरों के साथ अन्याय करके उनका हक छीन लेते हैं। मार्क्स की दृष्टि में जो उपज भूमि या मिलों से होती है उसका एकमात्र कारण मजदूरों का परिश्रम या उनकी मजदूरी है। उसने इस बात के विचारने की तकलीफ नहीं उठाई कि मालिकके पास भूमि कहां से,आई उस में उसका कुछ धन लगा है या नहीं यदि लगा है तो क्यों न उस धन के व्याज के रूप में वह धन उसे मिलना चाहिए, जिसे भृत्यातिरिक्त धन कहा जाता है। यदि कोई मिल है तो उस की मशीनों का मूल्य, उसके लिये इमारत बनवाना और फिर उस इमारत में उसे फिट कराना तथा दैनिक कृत्य के लिये कोयला तेल पानी आदि का व्यय इत्यादि, ये सब काम क्या विना पूंजी लगाये हो गये? यदि नहीं तो क्यों न मिल मालिक को वह धन जो मजदूरी से बचा है, मिलना चाहिये। इस प्रकार विचार करने से पता चलेगा कि भृत्यातिरिक्तवाद वाक्-छल मात्र है। उसका मूल्य कुछ नहीं। इसका अभिप्राय यह नहीं कि मजदूरों को काफी मजदूरी नहीं मिलनी चाहिये। मजदूरी अवश्य इतनी होनी चाहिये जिससे वे एक सभ्य नागरिक का-सा जीवन व्यतीत कर सकें जैसा कि कहा जा चुका है।

आठवां अध्याय

अन्तर्जातीय वर्गवाद

यह ऊपर कहा जा चुका है कि इंग्लैण्ड में वर्गवाद इस बुरी तरह से फेल हुआ है कि वहां निकट भविष्य में भी उसके पनपने की आशा नहीं रही। फ्रांस, इटली और जर्मन तथा आस्ट्रिया मे वर्गवादी अल्पपक्ष के हैं। जापान, टर्की और अमरीका में उनका अस्तित्व नही के बराबर है। रूस का हाल एक पृथक् अध्याय में दिया जायगा। १९१४ ई० में योरूपीय महायुद्ध के उपस्थित होने पर वर्गवादियो के सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि निम्नस्थ तीन सूरतों में से कौन सी सूरत अख्तियार करनी चाहिए:

(१) मूलतत्त्ववाद (Fundamentalism) अर्थात् मार्क्स की शिक्षानुसार वर्गवाद को उसी के अनुकूल काम करते रहने देना चाहिये और उसी शिक्षा पर अक्षरश: अमल करना चाहिये।

(२) मन: सृष्टवाद(*Utopeanism*) अथवा उसे केवल वाद रूप में मानते रहना चाहिये,क्रियात्मक रूप चाहे दिया जा सके या नहीं।

(३) पुनर्दृष्टिवाद (Revisionism)

अन्तर्जातीय वर्गवाद की द्वितीय बैठक में, जो १८८९ ई. में हुई थी, मार्क्स को सिद्धांत के रूप में उससे पहले अपनाया गया

था, परन्तु अब उसके अनुसार काम होना बन्द हो चुका था। इसीलिये इन वर्गवादियों के सन्मुख यह प्रश्न उपस्थित हुआ था कि उपर्युक्त तीन सूरतों में किसे अपनाना चाहिए। इस विचार-विनिमय का फल यह निकला कि वर्गवादियों के अधिकांश समुदाय ने यह स्वीकार किया कि राज्य पूंजीपतियों का है,उनके भीतर रहते हुए मजदूरों की अवस्था में जितना सुधार हो सकता है, करना चाहिए"।[1]

वर्गवाद समय के प्रतिकूल है।

उपर्युक्त निश्चय कर लेने के बाद यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि इस निश्चय की संगति "मार्क्सवाद" के साथ किस प्रकार लग सकती है क्योंकि मार्क्स की शिक्षा यह थी कि साधनोत्पत्ति के स्वामित्व के निर्णय का राज्य पक्षपातरहित पंच नहीं हो सकता क्योंकि वह एक श्रेणी की वृद्धि का पक्षपातीहै और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह समय समय पर श्रमजीवियों पर अत्याचार करता रहता है, और राज्य-नायकों का पक्ष लेता रहता है। इस प्रश्न पर विचार करने के बाद वर्गवादियों को यह स्वीकार करने के लिये बाधित होना पड़ा कि मार्क्स का मानस शास्त्र (Ideology) समय के प्रतिकूल है। इस लिए यत्न

---

१ अंग्रेजी के शब्द इस प्रकार हैं: 'Most of the parties within it (The Second International) accepted the existence of the "Bourgeois" state and directed energies Forward, the improvement of the r[illegible] working class inside its Frame work. (A. Hi- Socialism P 114.)

करना चाहिये कि श्रमजीवियों के लिये उपयोगी सुधार कराये जावें। इस निश्चय के परिणामस्वरूप निम्न बातों को वर्गवादियों को अपनाना पड़ा:—(१) मध्यम श्रेणी के प्रगतिशील व्यक्तियों का सहयोग (२) साधनोत्पत्ति के मालिकों को राज्य चलाने के लिये, उनके मन्त्रीमण्डल में शरीक होकर सहयोग देना, (३) क्रांन्तिकारी समस्त साधनों से पृथक् रहना।

वर्गवाद का आगामी कार्यक्रम

स्पष्ट है कि वर्गवादियों ने अपने सिद्धान्तो पर पुनर्दृष्टि डालने के'वाद'को अपनाया और आगे के लिये अपना कार्यक्रम इस प्रकार से बनाया कि राज्य पर विश्वास करना चाहिये क्योंकि यह आशा हो सकती है कि वह (राज्य) सुधारवादी हो जावे। व्यापार सघों और सहयोगी सघों पर भी श्रद्धा रखते हुये, उनसे सहकारिता रखनी चाहिये। इस सहकारिता से राज्य में मजदूरों के लिये सुधार होने में सहायता प्राप्त होगी। अस्तु जो स्थिति अब वर्गवाद ने अपनी बनाई, यह ठीक वही है जिसे जर्मनी देश में "ऐडवर्ड वर्नस्टीन (Edward Bernstien) और उनके अनुयाइयों ने अपना रखी थी, अथवा फौबियन सुसाइटी जिसकीशिक्षा दिया करती थी"और जिसका ब्रिटेन के व्यापार संघों पर पूरा-पूरा प्रभाव था और जिसकी बात पहले कही जा चुकी है।

मूलतत्त्ववादियों का कार्यक्षेत्र

ऊपर की पंक्तियों से यह बात साफ प्रकट हो जाती है कि योरुप के पश्चिमी भाग इंग्लैण्ड आदि में पुनर्दृष्टिवादियों का प्रभाव था और इसीलिये उन्होंने वर्गवाद में अपने देश की जरूरत के मुताबिक उलट फेर करके अपने काम के योग्य बना

कर, उसके अनुसार काम करना शुरू कर दिया था—मूलतत्त्व-वादियों का प्रभाव केवल रूस में था, जिसकी बात आगे कही जायेगी। अवश्य एक बार १८६९ और ७० के मध्य जर्मनी देश में भी विलहेम लीवनेच (*Wilhelm Liebenecht*) एक जरमन सोशल डिमोक्रट ने मूलतत्ववाद के ढंग का क्रान्तिकारी कार्यक्रम वहांके जरमन विरोधी लिवरलों से मेल करके विस्मार्क की "जर्मन गवर्नमेंट के विरुद्ध बनाया था परन्तु वह कार्यक्रम अस्थाई था और शायद इसीलिये सफल नहीं हो सका। पश्चिमी योरुप में इसकी असफलता का एक कारण यह भी था कि इस ओर के कृषक क्रांतिकारी मनोवृत्ति के नहीं थे और दूसरा कारण यह कि राज्य की ओर से उन्हें सुधार की आशा थी और उन सुधारों का सूत्रपात हो भी चुका था।

नवां अध्याय

अन्तर्जातीयसंघ की दूसरी बैठक और लेनिन

इस बैठक के निश्चय का प्रतिफल यह हुआ कि लेनिन ने समझा कि इस बैठक ने विश्वासघात किया है जो राज्य को पूंजीपतियों की वस्तु स्वीकार कर लिया है। उसने इन सहयोगकर्मियों को अतिशय वर्गवाद भक्त (Social Chauvinists) कहकर उनपर प्रेस द्वारा आक्रमण करके, अपने हृदय के मैल को धोना प्रारम्भ कर रक्खा था। इसमें जरा भी शक नहीं कि लेनिन के साथ इस बैठक में धोखा देने का व्यवहार वर्गवादियों ने किया था। उसने अपना सिद्धान्त इस संघर्षण से, यह बना लिया कि साधनोत्पत्ति के मालिकों ने, उनमें से भी विशेषकर ऐसे देशों के मालिकों ने जो राज्यसत्ताभिमानी थे, अपने मुनाफे का एक भाग शिक्षित मजदूरों को अधिक मजदूरी के रूप में देकर, इन्हें अन्य श्रमजीवियों से पृथक् करके, उनका एक पृथक समूह बना दिया जिसे शिष्टजनसत्तात्मक समुदाय (Aristocracy of labour) कह सकते है। वह समुदाय पूंजीपतियों की सदैव वृद्धि का इच्छुक रहा करता था। इस समूह का प्रजातन्त्रवादी वर्गवादियो, और व्यापार संस्थाओ पर अधिकार था। दूसरी अन्तर्जातीय सघ की असफलता का कारण भी वही समूह था। असली क्रान्तिकारी श्रेणी उन मज-

दूरों में मिलेगी जो अपर्याप्त मजदूरी पाते है। इस लिये "खालिस युद्धप्रिय वर्गवादियों को सहायता के लिए तय्यार करना चाहिए।[1] लेनिन के ये विचार साफ प्रकट करते है कि उसका उद्देश्य क्रान्ति और केवल क्रांति था। उसका यह उद्देश्य नही था कि मजदूरों को काफी मजदूरी मिल जाय। उसका यह उद्देश्य ऐसे देशों में पूरा नही हो सकता था जो कला कौशल को क्रियात्मक रूप देने में निपुण थे। उसकी यह इच्छा भी इन देशों में पूरी नही हो सकी कि इन राजाओं की लड़ाई (१९१४-१८ तक के युद्ध) को घरेलू युद्ध के रूप में परिवर्तित कर दिया जावे। लेनिन के इन विचारों से पता चलता है कि उसे केवल श्रम की उपयोगिता स्वीकार थी धन की नहीं। और काम उसका भी धन के बिना नहीं चलता था। इस संघर्षण का फल मध्य योरुप, पश्चिमी योरुप, और नये बाल्टिक राज्य आदि मे यह हुआ कि प्रत्येक स्थान में जातीय भावनाओं की अपेक्षा से वर्गवाद की हार हुई।

अन्तर्जातीय संघ की तीसरी बैठक

यह बैठक १९२१ ई० में लिघोर्न (Leghorn) नामक स्थान में सघटित हुई थी। इस बैठक में फिर क्रान्ति के पक्ष में निश्चय हुआ। इस निश्चय से असन्तोष बढ़ा। सेराटी (Serrati) मास्को से बाहर था। वह बहुत क्रोध से भरा हुआ मास्को लौटा। यह इस बैठक की क्रान्तिकारी तजबीज के सर्वथा विरुद्ध था उसने साफ कह दिया कि इस निश्चय का परिणाम यह होगा कि व्यापार संघों का बहुपक्ष या तो इस अन्तर्जातीय संघ से

---

1. A History of Socialism P.120.

हो जायेगा या यह पार्टी समाप्त ही हो जावेगी। जब इस क्रान्तिकारी संघ ने इस ओर ध्यान दिलाने पर भी अपने क्रांतिकारी प्रोग्राम के छोड़ने की इच्छा प्रकट नहीं की तो, वर्गवादियों का एक बड़ा समुदाय असन्तुष्ट होकर वहां से चला गया। फल इसका यह निकला कि संघ का अवशिष्ट भाग क्रान्ति के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए लेनिन के साथ हो गया।

फ्रांस और वर्गवाद

यह बात कही जा चुकी है कि फ्रांस में वर्गवाद समाप्त कर दिया गया था। उसका कारण फ्रांस का जर्मनी से हार जाना हुआ था। इसके बाद बारबेरिट (Barberit) ने यत्न किया कि एक "सिन्डीकल वाद" (Syndical movement) प्रचलित किया जावे जो अन्त में माल उत्पन्न करने वालों का एक "सहयोगवाद" बन जावे। वह इसलिये नहीं कि उसके द्वारा पूंजीपतियों के नाश का काम जारी किया जावे बल्कि केवल इस लिए कि पूंजी में समता हो जावे। यह वाद फ्रांस में फैला और १८७५ ई० में केवल एक पैरिस नगर में १३५ सिन्डीकेट (समिति) बन गये। १८७६ ई० में इन समितियों के प्रतिनिधियों ने एक श्रमसंघ (Labour Congress) संगठित की। इसमें केवल उन समितियों के प्रतिनिधि ही शरीक हुए, जिनमें पारस्परिक सहायता और सहयोग की भावना जागृत हो चुकी थी। इस संघने अपना उद्देश्य यह घोषित किया कि उनके प्रतिनिधि राज्य परिषद् में लिये जावें। परन्तु १८७९ ई० में इस संघ का नाम वर्गवादी संघ रखा गया और उसका उद्देश्य यह प्रकट किया गया कि उपज के साधनों का मालिक संघ हो और

इस उद्देश्य की पूर्ति करने के लिये उन्होंने एक राजनैतिक श्रम सघ बनाया। इस संघ से वे लोग पृथक् हो गये जो राज्य से झगड़ा करने के हक में नही थे। प न्तु इस संघ का प्रभाव फ्रांस की राज नीति पर पड़ा। १८७६ ई० में "फ्रेंच रिपबलिक" फ्रेंच राज्य परिषद्, ऐसा बना जिसमें मजदूर श्रेणी, बिना विरोधियों की सहायता के,अपना प्रभाव डाल सकी।

गेसड़े का फ्रांस में प्रभाव

१८७३ ई० में जब प्रथम बार अन्तर्जातीय संघ पैरिस में संगठित हुआ था तो उसके प्रभाव से प्रभावित कुछ एक वर्गवादी बचे और छिपे हुए चले आ रहे थे। १८७७ ई० में जब उन्हें एक राजनैतिक नेता "गेसड़े" (Jules Guesde) के रूप में मिल गया तो उन्होंने गेसड़े के मत का इगैलिटि(Egalite)नामक पत्र द्वारा प्रचार प्रारम्भ कर दिया। अब इस संघ के लोग अपने को संग्राहक (Collectorist) कहा करते थे। १८८२ ई० में यह संघ दो पार्टियों में विभक्त हो गया, उनमें से एक पार्टी, (गेसड़े से प्रभावित) मार्क्स के वैज्ञानिक समाजवाद की समर्थक थी। इस पार्टी ने यह घोषित करते हुए कि पूंजीपतियों का सुधार सम्भव नहीं, क्रांति को भी अपने कार्यों का अंग बनाया, परन्तु ऐसा करने पर भी, उन्होंने चैम्बर और म्यूनिसिपल कौंसिलों में शरीक होने के लिये प्रतियोगिता भी की। यह कार्य सुधारमूलक नही था अपितु इसके द्वारा वे . . .

अपना प्रभाव डालना चाहते थे। दूसरी पार्टी "पाल ब्राउंस" (Paul Broutse)की अधिनायकता में, जो अपने को सम्भववादी (Possibilists कहा करते थे, इंग्लैण्ड फेबियन सोसाइटीके अनुयायियों की तरह, पार्लियामेंट, म्यूनिसिपैलिटी और सिविल सर्विस में घुस कर अपना अधिकार बढ़ाने के रुख में थी। यह मजदूर श्रेणी से अधिक निकट थी। अस्तु। इस प्रकार के अनेक परिवर्तन फ्रेंच दृष्टिकोण में होते रहे और अनेक पार्टियां बनती और बिगड़ती रही। इन सब उतार चढ़ाव का प्रभाव फ्रांस के कृषकों पर, जो फ्रांस की सबसे बड़ी पार्टी थी, कुछ नहीं या बहुत थोड़ा पड़ा क्योंकि इस समुदायने अपना यह निश्चय नहीं बदला कि सम्पत्ति के अधिकार को किसी अवस्था में भी नहीं छोड़ना चाहिये। इसीलिये उन लोगों को जो गैसड़े के अनुयायी थे, सम्पत्ति के सम्बन्ध में अपना उपेक्षाभाव दिखलाना पड़ा।

महायुद्ध का कारण

मूलतत्ववादियों में से कुछ एक ने, जो मार्क्सवाद के टीकाकार थे अथवा जो मार्क्सवाद के प्रचार ही के पक्षपाती थे, प्रकट किया और सिद्धांत के रूप से प्रकट करते रहे कि १९१४ के महायुद्ध का कारण फ्रेंच वर्गवादियों में उत्पन्न हुआ सुधारवाद था। उनका कहना था कि यदि फ्रेंच मजदूर-वर्ग के नेता अपना दृढ निश्चय युद्ध के विरुद्ध रखते और युद्ध की तय्यारियों का विरोध करते रहते तो जर्मनी और आस्ट्रिया वाले भी उनका अनुकरण करने के लिये बाधित होते। इसलिये इस युद्ध का सारा उत्तरदायित्व, फ्रांस के सुधारकों, देशभक्तों और राजनैतिक श्रम संघ वालो पर है। समाजवाद का पुराना मन्तव्य कि सदैव युद्ध के विरोधी रहना चाहिये, द्वितीय अन्तर्जातीय संघ ने बदलकर प्रत्येक को स्वतन्त्रता दी थी कि युद्ध

के सम्बन्ध में जैसा चाहें विचार रक्खें। इससे पहले फ्रांस के वर्गवादियों का निश्चय था कि राज्यपरिषदो और मन्त्रि-मण्डलों में शरीक नही होना चाहिए और इसीलिये वे कैबिनट में शरीक होने के सिद्धान्त (Millerndism) का विरोध करते रहते थे, परन्तु घटनाचक्र और परिस्थितियों ने उन्हें बाधित किया कि वे अपने इस विचार को बदलें। उन्होने यह विचार बदला। उनके इस परिवर्तित विचार का प्रदर्शन,हम १९२८ई. मे हुये पार्लियामेंट के निर्वाचन में देखते हैं। इस निर्वाचन से जो पार्लियामेंट बनी उसे हम साझे का राज्यसघ ही कह सकते हैं।

परिणाम

इंग्लैण्ड और जर्मनी से वर्गवाद पहले ही रुखसत हो चुका था, जैसा ऊपर दिखाया जा चुका है। फ्रांस की वर्तमान अवस्था (१९२८ ई० तक की अवस्था अभिप्रेत है) प्रकट करती है कि मार्क्स का मूल वर्गवाद अब वहां भी प्रचलित नही रहा। फ्रांस में अब जो कुछ है वह वर्गवाद का अधिकांश परिवर्तित रूप है। स्पेन में जनरल फ्रांकों की सफलता ने प्रदर्शित कर दिया कि वहां भी वर्गवाद की हार हो चुकी है। अस्तु। योरुप के बड़े २ देशों पर दृष्टिपात करने से साफ जाहिर है कि वहां मार्क्सवाद असली रूप मे सफल नहीं हो सका। अब हमको रूस पर एक दृष्टि डालनी बाकी है। इसलिये अब हम रूस में घटित घटना-चक्र को जनता के सम्मुख उपस्थित करते हैं।

दसवां अध्याय

रूस में क्रान्ति का प्रादुर्भाव

रूस में वर्गवाद या मार्क्सवाद की प्रारम्भिक सफलता का कारण वर्गवाद के सिद्धान्त नहीं थे बल्कि जार का अन्याय और अत्याचार था, जो वह राज्यशासन के नाम से प्रजा पर किया करता था। पश्चिमी युद्ध ने उस क्रान्ति के विचार में चार चांद लगा दिये। रूस की प्रजा का यह सौभाग्य था कि उसे लेनिन जैसा चरित्रवान् चुस्त और चालाक नेता मिल गया। लेनिन की कुछ बातें हम लिखेंगे। युद्ध अभी समाप्त नहीं होने पाया था कि पैट्रोग्राड में विद्रोह फैल गया। मार्च १९१७ ई० में एक बड़ी हड़ताल हुई। दो लाख चालीस हजार हड़तालियों ने नगर में घूमना प्रारम्भ किया। रूस के प्रसिद्ध "कास्ट" सैनिक जो हड़तालियों के दमन के लिये नियुक्त हुये थे, विद्रोहियों से मिल गये। इस प्रकार जार की सरकार का शासन-सूत्र ढीला हो गया। यहां तक कि रूस के बड़े अमीरों (Grand Dukes) ने भी जार के शासन की निन्दा की। जार की सरकार का अन्त हुआ और शासन सूत्र एक उदार और मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों से बनी गवर्नमेंट के हाथ आया, जिन्होंने प्रजा को विश्वास दिलाया था कि प्रजातन्त्रीय नियमों के अनुकूल शासन रहेगा और पश्चिमी पूंजीपतियों की पद्धति के भीतर रहते हुए क्रमशः सुधार करने का यत्न किया जायेगा। परन्तु शासक समुदाय निर्बल था इसलिये यह गवर्नमेंट सफल नहीं हुई। इस

लिये क्रान्ति समाप्त नही हुई । यद्यपि क्रान्तिकारी मजदूर और सिपाही थे परन्तु गवर्नमेंट की बागडोर फिर अमीरों ही (Bourgeoisies) के हाथ आ गई । परन्तु यह सरकार भी प्रजा की तीन मांगों- शान्ति,रोटी और स्वतन्त्रता को पूरा नही कर सकी । इसलिये रूस के समाजवादियों ने इनका समर्थन नही किया और यत्न करना प्रारम्भ किया कि शासन सूत्र डूमा (रूसी पार्लियामेंट) के हाथ न रहे अपितु सोवियत के हाथ आ जावे ।

लेनिन का क्रान्ति में भाग लेना

लेनिन जो अब तक देश-बहिष्कृत था, जर्मन गवर्नमेंट की सहायता से रूसमें दाखिल हुआ । सामयिक गवर्नमेंट ने भरसक यत्न किया कि प्रजा को विश्वास हो जावे कि वह जर्मन गुप्त-चर है,परन्तु लेनिन समयकी प्रतीक्षा में था । अक्टूबर १६१७ई. में उसे विश्वास हो गया कि क्रान्ति के लिए उचित समय आ चुका है । इस बीच में सोवियत की एक कांग्रेस हुई जिसमें रूस के प्रत्येक भाग से प्रतिनिधि आकर सम्मिलित हुए थे,उसके द्वारा देशव्यापी क्रान्ति आन्दोलन प्रारम्भ हुआ । बोलशेविकों ने बागी सिपाहियों और नाविकों की सहायता से पेट्रोग्राड के मुख्य भागों पर कब्जा कर लिया । इसके कुछ एक साल बाद ही मास्को भी उनके अधिकार में आ गया और अब प्रान्तों पर भी, इसके बाद उन्होने अधिकार करना आरम्भ कर दिया ।

लेनिन की घोषणा

लेनिन ने इसके बाद घोषणा की कि समस्त भूमि प्रजा की सम्पत्ति है और यह कि कृषको ने क्रान्ति से उसे प्राप्त किया है । अब बोलशेविक गवर्नमेंट के दो कर्तव्य निश्चित किये

(१) युद्ध को समाप्त करना। (२) दुर्भिक्ष को रोकना। लेनिन इनकी पूर्ति का यत्न कर ही रहा था कि इसी बीच में जर्मनी की हार हो गई और वा सेली की सन्धि के अनुसार कुछ रूस के खोये हुए प्रान्त उसे फिर मिल गये, जिससे युद्ध की समाप्ति के साथ ही दुर्भिक्ष का भय भी कम हो गया। अब ट्रोट्स्की (Trotsky) को लाल सेना का सेनापति बनाया गया। यद्यपि ट्रोट्स्की सिपाही नही था परन्तु उत्कृष्ट सगठनकर्त्ता था। अब जो बोलशेविको का युद्ध गोरो से था, उसके लिये दो ही बातें आवश्यक थी (१) उत्तम संगठन। (२) और प्रजा की सहानुभूति। ट्रोटस्की ने इन्हे उत्तमता से पूर्ण किया। अपनी फौजी स्थिति को दृढ करने के लिये बोलशेविकों ने सभा शासित श्रम की प्राप्ति के लिये अनियन्त्रित स्वामी प्रथा (Arigid d ctatorial system of militarized labour) को प्रचलित किया[1] परन्तु फलस्वरूप अनिवार्य प्रतिक्रिया का प्रारम्भ हुआ।

लेनिन का पूंजीप्रथा प्रचलित करना

भूखे किसान और कहीं-कहीं सिपाही और नाविकों ने भी मिलकर बोलशेविक सरकार के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा किया और मेन सेवकों के नेतृत्व में वे क्रान्ति करने पर उतारू हो गये। यह आन्दोलन फौज के बल से दबा दिया गया परन्तु दुर्भिक्ष जारी रहा। तब लेनिन ने मजबूर होकर अस्थायी रीति से नियन्त्रित पूंजीप्रथा को जारी किया, जिससे कृषकों और छोटे अल्पधनी व्यापारियों को लाभ पहुँचाया जावे।[2] इससे

---

(1) A History of Socialism by Sally Graves P. 171.

(2) Do P. 171.

बोलशेविक सरकार को थोड़ा श्वास लेने का अवसर प्राप्त हो गया और उसने अपने खोये हुए व्यापार को फिर जारी किया और इस नई पूंजीप्रथा से उसकी आर्थिक अवस्था भी कुछ सुधरी।

आर्थिक सुधार

छोटे छोटे कलाकौशल के कार्य यथापूर्व प्रचलित रहे परन्तु बड़े-बड़े कारखाने सोवियत कांग्रेस की निर्माण की हुई सर्वोच्च आर्थिक समिति की देख-रेख मे पब्लिक ट्रस्ट से खोले जाने लगे बैंक भी सरकार के नियन्त्रण में आ गये और कोआपरेटिव सोसाइटियों ने सहायता देने का काम जारी किया। सोवियत का यह नया पूंजीवाद पूंजीवाद तो था परन्तु अन्त को वह राज्य के पूंजीवाद के रूप में परिवर्तित हो जायेगा, ऐसा विचार था।

१९२३ ई० में बना हुआ रूस का राज्यसंगठन

सैली प्रेक्स की सम्मति में १९२३ ई० में रूस की बनी हुई गवर्नमेंट, एक प्रकार की उस प्रकार की गवर्नमेंट है, जिसे ग्रीक में (Hierarchical Govt.) कहा जाता था। रूस की इस गवर्नमेंट का ढांचा इस प्रकार का था:—

(१) कृषक समुदाय ने गुप्त बैलटके द्वारा अपना प्रतिनिधि चुना—ये प्रतिनिधि जिला सोवियत के एक अंग बने। १।२

(२) जिला सोवियत अपना प्रतिनिधि प्रान्तिक सोवियत (Regional Soviet) के लिये चुनता है।

---

(1) A History of Socialism P. 173.

(2) Soviet – Council of Workmen and Peasants.

(३) प्रान्तिक सोवियत सोवियत प्रजातन्त्र (The soviet of Republic) के लिये अपना प्रतिनिधि चुनता है।

इसी प्रकार चुनावों से "आल यूनियन कांग्रेस आव सोवियटस्" (The All Union Congress of Soviet— R. U, C. S.) बन जाती है। यह वर्ष में एक बार सगठित होती है।

४) इसी प्रकार भिन्न २ जातियों के प्रतिनिधियों से जातीय संघ (Council of Nationalities) बनता है। ये जातीय समुदाय यूनियन आव सोशियलिस्ट सोवियत रिपब्लिक (V. S. S. R) के अन्तर्गत होते हैं।

(५) उपर्युक्त यूनियन और कोसल ये दोनों मिलकर मुख्य प्रबन्धक सभा The Central Executive Committee) का निर्माण करते है।

(६) यह मुख्य प्रबन्धक सभा प्रेजेडियम (Prasidium) प्रेसीडेन्ट का निर्वाचन करती है और यह प्रेसीडेन्ट सोवियत मन्त्रिमण्डल (Council of Commis ars) का नियन्त्रण रखता है। सं० ३ में वर्णित सोवियत प्रजातन्त्र (The A. V. C. R.) सिद्धान्त के रूप में सबसे बड़ा संघ आईन बनाने वालों का समझा जाता है।

(७) प्रारम्भिक निर्वाचन में एक प्रतिनिधि नगर के २५ हजार मतदाताओं की ओर से लिया जाता है और इस प्रकार एक प्रतिनिधि प्रति एक लाख २५ हजार ग्राम के मतदाताओं का होता है।

नोट—साफ जाहिर है कि इस प्रतिनिधि-निर्वाचन में ग्रामों की अपेक्षा नगरों का अधिक मान किया गया है अथवा यों कहिए कि उन्हें अधिक अधिकार दिये गये हैं।

(८) सर्वोच्च आर्थिक समिति (The Supreme Economic Council) समस्त देश के व्यवसायों का नियन्त्रण करती है, उसमें गवर्नमेंट, व्यापारिक संघ और को-आपरेटिव सुसाइटियों के प्रतिनिधि शामिल होते हैं। इसका प्रधान अपने पदाधिकार से (T. S. I K.) प्रबन्धक सभा का मेम्बर होता है।

१९२३ ई० के इन सुधारों के बाद लेनिन युग समाप्त हो चुका था और स्टालिन युग ने उसका स्थान लिया था। ट्राटस्की को देश निकाला दिया जा चुका था। स्टालिन के लिये लेनिन ने अन्तिम दिनों में कहा था कि वह उद्धत, अशुभचिन्तक, चपल, अवर्गवादी और ईर्ष्यालु (Rude, disloyal capricious, Nationalist & spiteful) है।

(९) परन्तु उसके मरणासन्न होने पर यह कहना कुछ उपयोगिता नहीं रखता था :—

प्रारम्भ में लेनिन या उसके बाद स्टालिन रूस का डिक्टेटर हुआ और ये दोनों जो चाहें अपनी इच्छानुसार सब कुछ करते थे और करते हैं।

लेनिन का उदाहरण

लेनिन की आज्ञाओं को एक निकृष्ट डिक्टेटर के रूप में पाकर उसके एक फौजी आफिसर ने, उन आज्ञाओं को अपने लिय असत्य समझकर, लेनिन के पास जाकर त्यागपत्र दिया कि "मुझे अपना काम करने दो और तुम जाकर अपना काम करो अन्यथा गोली से मार दिये जाओगे।"

लेनिन में जहां अनेक गुण थे वहां इस प्रकार के काम करने में उसे जरा भी संकोच नहीं था :—

(क) प्रेम में उसने अपना नाम "मोडरा चेक" (Modra Chek) प्रकट कर रखा था परन्तु म्यूनिच में अपना नाम "मेइर" (Maier बतलाया था।[1]

(ख) लेनिन ने स्वीडन का जाली पास्पोर्ट बना कर रूस जाने का यत्न किया।[2]

(ग) फिर उसने इसी प्रकार का जाली पास्पोर्ट एक पुलिस के अफसर से बनवाया था।[3]

(घ) उसने मसनूई बाल लगा कर और भ्रुओं के बालों को रंग कर बदले हुए लिबास में पीटर्सबर्ग जाने के लिये विबोर्ग की यात्रा की।[4]

(त) लेनिन को उसके जीवन में लोग उसे गुण्डा (Bandit) और जरमन जासूस कहा करते थे।[5]

(थ) उसने जेलखाने में लिये डबलरोटी के एक टुकड़े की दवात बनाई थी और जब जेल के बारक में जाने के वक्त तलाशी होती थी, तब उसे मुंह में छिपा लिया करता था।[6]

स्टालिन के कारनामे

रूस का एक राजनैतिक "कार्देल काका थीडस" रूस से भाग कर बरलिन आया और उसने अप्रैल १६३४ ई० में प्रकट किया कि स्टालिन जार से अधिक अन्यायी है। वह जरा भी मतभेद प्रकट करने पर अपने साथियों को फांसी के घाट

---

1. Lenin and Gandhi by Rene Fulop Milly P. 8—69
2. Do P. 82
3. Do P. 85
4. Do P. 85
5. Do P. 101
6. Do

उतरवा देता है। ३ लाख पौंड सालाना केवल उसका निज का व्यय होता है। इत्यादि। स्टालिन ने कार्देल के लिये हुक्म दे रखा है कि उसे जिन्दा या मारकर लाया जावे।'

(क) स्टालिन की ईश्वरविरोधी नीति के कारण तथा उससे मतभेद रखने से जो व्यक्ति वध कराये गये उनका विवरण इस प्रकार है :—

३१ लाट पादरी, १५६० छोटे पादरी, २४५८५ वकील और जज, ७९९७९ कानूनी अफसर, १६३६७ प्रोफेसर और विद्यार्थी ९५८९० अमीर और रईस, ५६३४० सिविल और फौजी अफसर, २ लाख मजदूर स्त्री पुरुष, ३ लाख राजनैतिक कार्यकर्ता, ९ लाख किसान, ५००० गिरजा गिराये गये, २॥ लाख रूसी बाहर चले गये।*

(ख) पंचवर्षीय कार्यक्रम में स्टालिन को स्वीकार करना पड़ा कि वर्गवाद के सिद्धान्त के अनुसार कुशल और अकुशल मजदूर एक जैसी मजदूरी पर नहीं रह सकते इसलिये उसने घोषणा की कि "In each industry and each factory there are advanced group of skilled workers who can be retained in employment only by promoting them and raising their wages."

उन्हें अपने कारखानों में रक्खा जा सकता है।[1] फिर इसी प्रकरण में उसने एक दूसरी घोषणा में कहा है :—

"कार्यकर्ताओं में जो विशेषज्ञ हैं, उन पर सख्ती करना हानिकारक और अपमानजनक कार्य है। इसलिए हमें अपना विचार, इनजीनियरो और विशेष कला विज्ञों के लिए, जो पुराने विचार के हैं, बदल लेना चाहिए। हमें उनकी अधिक परवाह करनी चाहिए और उनकी ओर अधिक ध्यान देना चाहिए और उन्हें उत्साहित करना चाहिए कि वे हमारा काम करें। कुछ एक हमारे साथी चाहते हैं कि कारखानो मे केवल वर्गवादी ही उच्च पदो पर नियुक्त होने चाहिएं और इसीलिए कई बार हमें योग्य और उत्तम कायकर्त्ताओं को, जो हमारी पार्टी के नही थे, निकाल देना पड़ा और उनकी जगह उनसे कम योग्य वर्गवादियों को रखना पड़ा। इस बात के कहने की जरूरत नही कि इससे बढकर बेहूदा और बुरे व्यवहार का काम और कोई नही हो सकता और ऐसे कामों से वर्गवादी समुदाय वदनाम और विश्वास करने के अयोग्य ठहरता है और इससे अवर्गवादी कार्मकर्ता हमारे शत्रु बन जाते हैं।[2] स्पष्ट है कि अनुभव के आधार पर यहां वर्गवाद का सिद्धान्त अव्यवहार्य प्रमाणित हुआ।

(ग) सोवियत रूस मे बोलशेविक सम्प्रदाय के प्रचलित होने से यह नियम प्रचलित किया गया था कि वर्गवादी मजदूर राशनकार्ड के द्वारा भोजन वस्त्र पाते रहें और काम करें। उन्हें काम की और कोई मजदूरी नही मिलती थी, परन्तु अवर्गवादी

(1) The Leader Allahabad 8-8-1941

(2 Do D 5 5 1933.

मजदूर मजदूरी पाते थे, उन्हें राशनकार्ड नहीं मिलता था, अनुभव ने प्रमाणित किया कि वर्गवादी मजदूर थोड़ा और दूसरे मजदूर ज्यादा काम करते थे। एक अन्तर और भी था कि दूकानों से वर्गवादियों को कम मूल्य पर चीजें मिला करती थीं परन्तु अवर्गवादियों को उन्हीं चीजों के अधिक दाम देने पड़ते थे। इससे जहां एक ओर काम कम हुआ वहां दूसरी ओर असन्तोष भी बढ़ा। इसलिए वी० एम० मोलोटोव (V. M. Molotove) जो वर्गवादी संघ के प्रधान थे, उन्होंने उपर्युक्त प्रथा को बन्द करते हुए घोषणा की कि भविष्य में प्रत्येक को, चाहे वर्गवादी हो या अवर्गवादी, काम की मजदूरी मिला करेगी, जैसी प्रथा अन्य सभी सभ्य देशों में प्रचलित है।[1] इससे भी वर्गवाद की अव्यावहारिकता सिद्ध होती है।

रूस में लेनिन और स्टालिन के व्यवहार

इस प्रकरण को समाप्त करने से पहले हम लेनिन और स्टालिन के क्रियात्मक जीवन पर एक दृष्टि डाल देना उचित समझते हैं, जिससे सुगमता से समझा जा सके कि लेनिन का सोवियत अब केवल कागज के पृष्ठों पर बाकी रह गया है। लेनिन और ट्रॉटस्की ने जो अक्तूबर १९१७ में रूस में क्रांति उत्पन्न की थी उसका उद्देश्य था 'शान्ति, भूमि और रोटी" सिपाहियों के लिए शान्ति, कृषकों के लिए भूमि और

---

(1) The Monthly Review issued by U. S. S. R. Trade Deligation in Great Britain for the m h January 1936, quoted in the Hindustan Times ~ 23. 2. 1936.

मजदूरों के लिए रोटी। क्रान्ति के सफलतापूर्वक समाप्त होते ही बोल्शेविकों ने घोषणा की थी कि जारइज्म के साथ वे पूंजीवाद को भी समाप्त करके रूस में स्वतन्त्र और समतामय समाज की स्थापना करना चाहते हैं, जिसका अभिप्राय यह था कि वह समाज श्रेणीरहित, प्रजातन्त्रीय और अन्तर्जातीय होगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए निज सम्पत्ति समाप्त की गई, कारखाने और खानों की पैदावार मालिकों से लेकर राज्य की सम्पत्ति ठहराई गई, जिसका नियन्त्रण कार्यकर्त्ता करेंगे, फौजी और जहाजी दुनियां में नीच-ऊंच प्रकट करने वाले दरजे और पद उड़ा दिए गए, स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार मिले।

शिक्षाप्राप्ति का सब को एक जैसा अवसर दिया गया। वर्गवादियों ने राजनैतिक सत्ता अपने अधिकार में करके घोषणा कर दी कि ज्योंही पूंजीवाद नष्ट हो जायगा पूर्ण प्रजातन्त्रीय राज्य व्यवस्था प्रचलित हो जायगी। लेनिन ने आघोषित किया कि प्रत्येक पाचक (Cook) को राज करना सीखना चाहिए, उस समय कुछ एक व्यक्तियों का राज्य समाप्त हो जायगा। इन घोषणाओं से रूस की प्रजा अत्यन्त प्रसन्न हुई और लोग भाई-भाई की तरह से रहने लगे और ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब पुलिस और फौज की जरूरत नहीं रहेगी।

१९२७ ई० में रूस की अवस्था

एक यात्री ने उपर्युक्त क्रान्ति के बाद जब रूस को देखा तो उसे प्रकट हुआ कि वहां भ्रातृभाव प्रचलित है और रंग वाली प्रजा के लिए तो मानो रूस स्वर्ग हो गया। एक नीगरो

ने हर्षाश्रु के साथ कहा कि "रूस ही एक देश है जहां हम आदमी समझे जाते हैं।" कारखानों में कार्यकर्ताओं का नियन्त्रण था। प्रत्येक कारखाने में दो प्रबन्धक होते थे, एक कलाभिज्ञ और दूसरा लाल प्रबन्धक। यह सारा प्रबन्ध प्रजा का प्रतिनिधि होता था और मजदूरों की मजदूरी, काम के घण्टों आदि के सम्बन्ध में कोई नियम, दूसरे प्रबन्धक की स्वीकारी के बिना, प्रचलित नहीं होसकते थे। शिक्षा विभाग में परीक्षायें उड़ा दी गईं, वरदी पहनना बन्द किया गया। अपराधी अध्यापकों का निर्णय स्कूल की अदालतें करती थीं। जो अध्यापक और विद्यार्थियों के प्रतिनिधियों से बना करती थीं। जानडेवी (John Dewey) इस शिक्षा प्रबन्ध को देख कर इतना प्रभावित हुआ कि "मुझ में इतनी शिक्षा नहीं कि मैं उसे वर्णन कर सकूं।" (I have not sufficient literary skill to describe it)[1]

विवाह और तलाक के कानून इस प्रकार संशोधित हुए जिससे स्त्रियों का दरजा पुरुषों से नीचा न रहे। स्त्रियों के स्वास्थ्य की दृष्टि से गर्भपात करना वैधानिक ठहराया गया था। सन्ततिनिग्रह का खूब ढंढोरा पीटा गया। चर्च जो जारइज्म के अंग थे, नष्ट किए गए। सहशिक्षा प्रचलित की गई।[2]

---

(1) Socialism reconsidered by M.R. Masani p. 12 & 13.

(2) Do p. 13 & 14.

१६३५ में रूस की अवस्था

वही यात्री रूस को और उन्नत देखने की शुभ आकांक्षा के साथ फिर १६३५ ई० में रूस गया परन्तु अब वहां का नकशा पलट चुका था। पंचवर्षीय योजना पूरी हो चुकी थी। कुछ आर्थिक सुधार दिखाई देता था। वर्गवाद के हाथ से राज्य निकल कर एक डिक्टेटर के हाथ में जा चुका था। सार्वजनिक स्थानों से लेनिन के चित्र हटाकर स्टालिन के लगाए गए थे।

गुप्तचर पुलिस (G. P. U.) प्रत्येक स्थान पर मौजूद थी, रूस की राजधानी मास्को में वर्गवादियों के स्थान में अधिकतर राजलोलुप व्यक्ति दिखाई देने लगे थे। कारखानों से "लाल प्रबन्धक" दूर किए जा चुके थे। कार्यकर्ताओं का शासन भी नष्ट हो चुका था। ऐसे मजदूरों का आधिक्य दिखाई देता था, जो स्पर्धा के साथ एक दूसरे से अधिक काम करने के इच्छुक थे। इस प्रथा को "स्टाखनोवइज्म (Stakhnovism)" कहा जाता है। पूंजपतियों की भाषा में इसे पीसवर्क (Piece work) कहते हैं। फल इसका यह था कि कई मजदूर अपने से निर्बल मजदूरों से पंचगुना और १० गुना तक अधिक काम कर लेते थे।

स्कूलों से स्कूल शासन की प्रथा बन्द कर दी गई, कड़ा नियन्त्रण रहने लगा, परीक्षायें फिर प्रचलित कर दी गईं। वरदी फिर पहनाई जाने लगी। और विद्यार्थियों की देख-रेख स्कूल में और स्कूल से बाहर वहा की गुप्तचर पुलिस करने लगी। तलाक की प्रथा कठोर कर दी गई। गर्भपात करना अवैधानिक ठहराया

गया। संततिनिग्रह बुरा समझा जाने लगा। राज की ओर से घोषणा की जाने लगी कि जिस परिवार में ११ तक बच्चे होंगे उन्हें पारितोषिक दिया जाया करेगा। जर्मन की तरह यहां किताबें तो नहीं जलाई गई परन्तु पुस्तकालयों से नापसन्दीदा पुस्तकें दूर कर दी गई। पाठ्य पुस्तक नये बनाये, इतिहास अपने अनुकूल तैयार करा दिये गये। दूर की हुई पुस्तकों में से एक ग्रन्थ जानरीड़ का भी था जिसका नाम था "Ten days that shooK the world." इस ग्रन्थ को लेनिन ने पसन्द करके उसमें वर्णित हालात को ठीक बतलाया था। यह ग्रन्थ केवल इस लिए नष्ट किया गया कि इसमें अनेक जगह लेनिन के नाम के साथ ट्रोटस्की का भी नाम अच्छे शब्दों में लिया गया था। इन हालात को देखकर उस यात्री को निराशा के साथ रूस से वापस आना पड़ा।

रूस की स्वतन्त्रता का नग्नरूप

(१) सोवियत रूस की ओर से एक बोर्ड है, जिसे वहां "ग्लैवलिट (Glavlit) कहते हैं। यह जांच पड़ताल करने का सब से बड़ा विभाग (Supreme Board of Sensorship) है। इसकी स्वीकृति लिये बिना रूस में कोई ग्रन्थ नहीं छप सकता, दैनिक, साप्ताहिक या मासिक पत्र उसी अवस्था में निकाले जा सकते हैं, यदि उनके संचालक प्रतिज्ञा करें कि सोवियत राज्य की नीति के सदैव समर्थक रहेंगे। इस बोर्ड़ी की स्वीकृति बिना बाहर से कोई ग्रन्थ रूस में नही आ सकता। रूस में कोई

---

(1) Socialism reconsiderd by M. R Masani P. 14—16.

धार्मिक ग्रन्थ नहीं छप सकता।[1]

(२) ५ दिसम्बर १९३४ को सोवियत रूस ने अपनी सरकार के ६६ अफसरों को मतभेद होने के कारण फांसी के तख्तों पर एक साथ लटका दिया।[2]

(३) एक अमरीकन विद्वान् जो अमरीका का पत्रकार (Journalist) था और जिसका नाम जानरीड़ (John Reed) था और जिसके एक ग्रन्थ के नष्ट किए जाने की बात कुछ पहले कही जा चुकी है और जो अपने वतन अमरीका को छोड़ कर लेनिन का साथी बन गया था, वह १९१९ ई० में मर गया। वह रूस में देवताओं की तरह माना जाता था। मरने पर उसे मास्को में लेनिन के बराबर दफन किया गया। उसके मरने पर समस्त सरकारी दफ्तर बन्द हो गए थे और १० हजार से अधिक आदमी उसके जनाजे के साथ गये थे। उसके जीवन-कालीन मित्र एक रूसी व्यापारी जे० एच० रुबिन (Jacob H Rubin) ने, जो अमरीका में व्यापार करता है, उस (जानरीड़) के सम्बन्ध में एक पुस्तक प्रकाशित की है।[3] उस पुस्तक के कुछ उदाहरण यहां दिये जाते हैं। पुस्तक में रोबिन ने जानरीड़ के लिए लिखा है कि उसने आंसू बहाते हुए दुःखी होकर उससे कहा:—

"रोबिन! मुझे (वर्गवादी बनने से) क्या लाभ हुआ? मैंने अपने मित्रों को (वर्गवादी बनने के लिये) छोड़ा, परिवार

---

(1) The Leader Allahabad 11-1-1930

(2) Modern Review January 1935 P. 133

(3) Moscow Mirage by J. H. Rubin quoted in the Daily Hindustan Times Dated 7.6.1935

को छोड़ा, परन्तु इससे क्या लाभ हुआ ? क्या सोवियट रूस के आदमी अमरीका निवासियों से कुछ अच्छे हैं ? कदापि नहीं ! क्या वर्गवाद ने किसी बात में भी सफलता प्राप्त करली है ? कदापि नहीं !

"मैं जन्मभर वर्गवादी रहा परन्तु मुझे निश्चय हो गया कि दुनियां हजारों वर्षों तक इस (वर्गवाद) के ग्रहण करने के योग्य न होगी " !

"अपने वर्गवादी नेताओं को देखो, ये जब समर्थ होते हैं तब क्या करते हैं ? लेनिन ट्रोटस्की और ऐसे ही कुछ एक को छोड़कर बाकी सभी छली राजनीतिज्ञ, ख्यालीपुलाव पकाने वाले और निरे मूर्ख हैं " ।

"यह बात (रूस में) प्रत्येक जानता है कि 'पोका' के मुखियागण रिश्वत लेते हैं, चोरी करते हैं और यहां तक कि लोगों को, उनका धन लेने के लिये, मार तक डालते हैं ।"

"सरकारी उच्चपदों पर और कारखानों में कौन आदमी नियत होते हैं ? वर्गवादी गण, योग्यतारहित राजनीतिज्ञ, ख्यालीपुलाव पकाने वाले जो अपना समय चाय पीने, व्याख्यान देने और पार्टीबन्दी करने में, लगाया करते हैं ।" "अमरीका में पूंजीवाद से, मैं घृणा करता था परन्तु वहां मुझे स्वतन्त्रता थी कि जिस गली कूंचे में चाहूं अपना मत प्रकट करूं । परन्तु यहां (रूस में) जो चाहते हैं कि दुनियां भर को स्वतन्त्र कर दें, मैं बोलशेविक सरकार की आलोचना नहीं कर सकता या एक शब्द भी सहानुभूति का पूंजीपतियों या अल्प

(MensheviKs) के लिये जुबान से नहीं निकाल सकता।"*

---

* असली अंग्रेजी के शब्द इस प्रकार है :—' What *I* have gained Rubin ! Sacrificed my friends, my family *myself and for what ? Are the People here any better* off than in the United States ? No ! Has communism accomplished anything ? No ! I have been a Socialist all my life, I still am in theory But I can see now that the world that is human beings—*will* not be ready for Socialism for thousands of years.

Look at your communist Leaders and what they do when *they are in Power ! Except for Lenin and Trotskey* and a few others, they are grafters, Politicians, theorist or hopeless fools,

Every body Knows that the Heads of Cheke are accepting bribes, stealing, even killing People to get their wealth, who hold the important position in the Govt. and in the factories ? Members of the Communist party, political Job holders *without any qualifications*, dreamers who spend their time drinking tea and making speeches or working for the party.

"वह (जानरीड) जिस से विदेशी वर्गवादी बड़ा प्रेम रखते थे, भयभीत रहता था कि कोई शब्द उसके मुंह से, बोलशेविक सरकार या उसके कर्मचारियों के विरुद्ध न निकल जाये, यहां तक कि अपने मेहमानों से भी डरता था, इस विचार से कि उनमें कोई सरकारी गुप्तचर न हो।" (John Reed, the best loved of foreign Communists told Rubin that he was afraid to say anything about the Govt. or the officials, even to his guests, fearing, that one of them might be a spy. (Hindustan Times, Dated. 7. 6. 1935)

विषमता की वृद्धि

(४) वर्गवादियों में प्रारम्भ में एक नियम प्रचलित था जिसे वर्गवादी "Party Maximum कहा करते थे और जिसका अभिप्राय यह था कि वर्गवाद का कोई भी सदस्य, सरकार से नियत या अल्प परिमाण से अधिक वेतन न ... परन्तु अब यह नियम रद्द कर दिया गया, जिसका ... हुआ है कि वर्गवादी बहुत सा धन अपनी ...

In the United States I hated the capitalistic ... but I was at liberty to get up on a street ... express my self. Here where they are ... whole world I can't criticise the Govt. ... sympathy not for the capitalists ... ... of the Communist."

के लिए छोड़ जाते है। उस धन को पाकर उनकी सन्तति, बिना धन कमाने का यत्न किये, अपनी आयु मौज से व्यतीत करती हैं।

(५) छठी नवम्बर १९३५ के रूसी सरकारी आर्गन 'प्रावदा (Pravda) में प्रकाशित हुआ था कि अनस्पर्धावादी खानों के मजदूर (Non Stokhanovist minor) सोवियट के खानों में ४०० से २०० रोबिल (रूसी सिक्का) तक पाते हैं परन्तु स्पर्धावादी १६०० रोबिल से अधिक प्राप्त कर लेते हैं। उन्ही खानों के सहकारी मजदूर यदि अनस्पर्धी है तो १७० रोबिल और यदि स्पर्धी हैं तो ४०० रोबिल प्राप्त कर लेते है। इनजी-नियरों और विशेषज्ञों का वेतन प्रायः अशिक्षित मजदूरों से ८० गुना होता है। एक अच्छा पुस्तक-लेखक ३०हजार रोबिल प्रतिमास प्राप्त कर लेता है।

(६) सोवियत सरकार ने यह नियम बना रखा है कि कोई व्यक्ति न कोई कारखाना खोल सकता है, न रेल जारी कर सकता है परन्तु सोवियत द्वारा जारी किए हुए "स्टेट बॉंडों" को जिनका ७ फीसदी सूद राज्य देता है, जितने चाहे कोई क्रय कर सकता है। इस प्रकार से व्याज खानेवाले पूंजीपतियों की एक नई श्रेणी रूस में बन रही है।' ईथल मैनिन" (Ethal Mannin) प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक ने प्रकट किया कि जब वह "मोलोटोव (Molotove) जो स्टालिन का सीधा हाथ माना जाता है, की पत्नी के पास मिलने गया तो उस देवी के राजसी ठाठ को देखकर वह आश्चर्य में पड़ गया परन्तु उसके सेवक वही फटे पुराने वस्त्रों में देखे गये। यह है रूस में आजकल की समता।

(७) सहशिक्षा जब बन्द की गई तो सोवियत की ओर से

कहते हैं, अपनी स्वतन्त्रता बोलशेविक सरकार के हवाले नहीं की थी, वे इसी सी.आई.डी.के बदौलत मौत के घाट उतारे गये इसी प्रकार ५०लाख और १ करोड़ के मध्य ऐसे राजनैतिक जिनकी सम्मति स्टालिन से नहीं मिलती थी और जिनमें ऐसे मुख्य वर्गवादी भी शामिल थे जिन्होंने रूस की क्रान्ति में भाग लिया था वध किए गये। इन व्यक्तियों के अभियोग किस प्रकार निर्णीत हुए इसका विवरण आर्थर कोइस्टला (Arthur Korstla) की पुस्तक 'दुपहरी में अंधेरा' (Darkness at Noon) से अधिक अच्छा कहीं नहीं मिल सकता। ईस्टरमैन के इस कथन में बड़ी सच्चाई है कि यदि निर्दोष व्यक्तियों के खून बहाने की माप तोल की जावे तो स्टालिन एक झील, हिटलर एक छोटे तालाब (DucK pond) और मसोलिनी एक कुएं के सदृश ठहरेंगे।" [१] स्टालिन को रशिया में 'वज्ड (Leader) कहते हैं। सच तो यह है कि रूस में एक व्यक्ति का शासन है। बलशाली स्टालिन अपने समस्त विरोधियों और मुकाबिला करने वालों का संहार करके बाकी रहा है। उसका राज्य "एकाधिपत्य है, श्रमजीवियों का

---

(१) अंग्रेजी के शब्द ये हैं :—"If the shedded blood of innocent men were measured, Stalin's would be a lake, Hitler's a ducK pond, Mussolini's could be dipped up by well.

(Stalin's Russia and the Crisis in Socialism by Mark Eastman)

नहीं जैसा कहा जाता है अपितु है श्रम जीवियों पर पूर्णतया एक व्यक्ति का शासन ।[1]

स्टैलिन किस प्रकार बलपूर्वक अपने को प्रजाप्रिय कहलाता है, इसका एक अच्छा उदाहरण "ऐण्डरी गाईड" (Andre Guide) ने दिया है। वह रूस गया था और राज्य का प्रतिथि (State guest) था। वह एक छोटे कसबे में ठहरा था। गाईड ने चाहा कि एक तार अपने आतिथ्यकृत (Host) स्टैलिन के पास भेजे। उसने तार पर Monsieur Stalin लिखकर डाक खाने में भेज दिया परन्तु डाकखाने से वह वापिस आया कि जब तक स्टैलिन के नाम के साथ "महान और प्रिय" (Great and Beloved) न लिखा जावे,कोई तार स्टैलिन के पास भेजने के लिए स्वीकार नहीं किया जा सकता।[2]

लेनिन और स्टैलिन का एक अन्तर

लेनिन पश्चिमी युद्ध के बाद बने जातीय सघ (League of Nations) को डाकुओं का समुदाय (A Gang of Robbers) कहा करता था परन्तु १६३५ के बाद उसी डाकुओं के समुदाय में स्टैलिन की गवर्नमेंट ने अपने प्रतिनिधि भेजे और उसके कार्यों में भाग लिया।

(I) Mission of Moscow by J. A. Davies.

(2) Socialism reconsidered by M. R. Massani P. 91.

कहते हैं, अपनी स्वतन्त्रता बोलशेविक सरकार के हवाले नहीं की थी, वे इसी सी.आई.डी के बदौलत मौत के घाट उतारे गये इसी प्रकार ५०लाख और १ करोड़ के मध्य ऐसे राजनैतिक जिनकी सम्मति स्टालिन से नहीं मिलती थी और जिनमें ऐसे मुख्य वर्ग-वादी भी शामिल थे जिन्होंने रूस की क्रान्ति में भाग लिया था वध किए गये। इन व्यक्तियों के अभियोग किस प्रकार निर्णीत हुए इसका विवरण आर्थर कोइस्टला (Arthur Korstla) की पुस्तक 'दुपहरी में अंधेरा' (Darkness at Noon) से अधिक अच्छा कहीं नहीं मिल सकता। ईस्टरमैन के इस कथन में बड़ी सच्चाई है कि यदि निर्दोष व्यक्तियों के खून बहाने की माप तोल की जावे तो स्टालिन एक झील, हिटलर एक छोटे तालाब (DucK pond) और मसोलिनी एक कुएं के सदृश ठहरेंगे।" [1] स्टालिन को रशिया में 'वज्ड (Leader) कहते हैं। सच तो यह है कि रूस में एक व्यक्ति का शासन है। बलशाली स्टालिन अपने समस्त विरोधियों और मुकाबिला करने वालों का संहार करके बाकी रहा है। उसका राज्य "एकाधिपत्य है, श्रमजीवियों का

---

(१) अंग्रेजी के शब्द ये हैं :-"If the shedded blood of innocent men were measured, Stalin's would be a lake, Hitler's a ducK pond, Mussolini's could be dipp-ed up by well.

(Stalin's Russia and the Crisis in Socialism by Mark Eastman)

नहीं जैसा कहा जाता है अपितु है श्रम जीवियों पर पूर्णतया एक व्यक्ति का शासन।[1]

स्टैलिन किस प्रकार बलपूर्वक अपने को प्रजाप्रिय कहलाता है, इसका एक अच्छा उदाहरण "ऐण्डरी गाईड" (Andre Guide) ने दिया है। वह रूस गया था और राज्य का अतिथि (State guest) था। वह एक छोटे कसबे में ठहरा था। गाईड ने चाहा कि एक तार अपने आतिथ्यकृत (Host) स्टैलिन के पास भेजे। उसने तार पर Monsieur Stalin लिखकर डाक खाने में भेज दिया परन्तु डाकखाने से वह वापिस आया कि जब तक स्टैलिन के नाम के साथ "महान और प्रिय" (Great and Beloved) न लिखा जावे,कोई तार स्टैलिन के पास भेजने के लिए स्वीकार नहीं किया जा सकता।[2]

लेनिन और स्टैलिन का एक अन्तर

लेनिन पश्चिमी युद्ध के बाद बने जातीय संघ (League of Nations) को डाकुओं का समुदाय (A Gang of Robbers) कहा करता था परन्तु १९३५ के बाद उसी डाकुओं के समुदाय में स्टैलिन की गवर्नमेंट ने अपने प्रतिनिधि भेजे और उसके कार्यों में भाग लिया।

---

(1) Mission of Moscow by J. A. Davies.

(2) Socialism reconsidered by M. R. Massani P. 91.

जब कोई जाति नेशनलिज्म की ओर चलती है तो उसकी मनोवृत्ति भी उसी प्रकार की हो जाती है जैसी धन और राज-सत्ता के अभिमानियों (Imperialist) की होती है। आज सोवियत रूस में यही चिह्न व्यक्त हो रहे हैं।

(१) जब वेन्डेल विल्की (Wendall Willkie) ने यह प्रश्न उठाया कि रशिया का अपने पड़ोसी देशों (तुर्किस्तान आदि) से क्या सम्बन्ध है ? तो सोवियत के आर्गन 'प्रावदा' (Pravda) ने गुर्राते हुये, यह उत्तर दिया कि यह हमारी भीतरी बातें हैं,इन का तुम से क्या सम्बन्ध ? क्या यह उसी प्रकार की बात नहीं है, जैसी कि चर्चिल ने विल्की को कही थी, जब वह हिन्दुस्तान में आना चाहते थे। फिर बतलाओ कि चर्चिल और स्टैलिन में क्या अन्तर रहा ?

(२) हेरी पोलिट (Hary Politt) और उसके कुछ एक साथियों ने प्रस्ताव करना शुरू किया था कि इंग्लैण्ड और अमरीका मध्यस्थ बनकर रूस और पोलैंड में मेल करा देवें। पोलिट ने इंग्लैण्ड के नागरिक होने से इस प्रकार की बात कही थी, परन्तु उसे सोचना चाहिए था कि एक रूस निवासी भी कह सकता है कि स्टैलिन मध्यस्थ बन कर इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान के मामले को सुलझा देवें। यदि चर्चिल कह सकता है कि इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान का मामला उनका घरेलू मामला है तो स्टैलिन क्यों नहीं कह सकता कि पोलैण्ड का मामला भी उसका घरेलू मामला है। यह उत्तर और प्रत्युत्तर तो ठीक माने जा सकते हैं, यदि चर्चिल और स्टैलिन दोनों को एक श्रेणी का व्यक्ति माना जाये, परन्तु यदि स्टैलिन वर्गवादी या कम से कम पूंजीपतित्व मनोवृत्ति के विरुद्ध होता तो जरूर

स्टैलिन और हिटलर का गठजोड़ा

१९३९ ई० में स्टैलिन और हिटलर ने पारस्परिक सहायता का पैक्ट किया,जब रशिया के महामन्त्री से पूछा गया कि वर्गवाद और फैसिज्म का यह पैक्ट कैसा है तो "मोलोटोव" ने उत्तर दिया कि "यह सब रुचि का विषय है" (It is all a matter of taste) इस पैक्ट के बाद दोनों ने मिलकर हमला किया और पोलैंड के पराजय के बाद दोनों ने पोलैण्ड के हिस्से करके अपना-अपना हिस्सा अपने-अपने अधिकार में कर लिया । इस कृत्य या दुष्कृत्य की किस प्रकार वर्गवाद के सिद्धांतो से संगति लगाई जा सकती है ?

वर्गवाद से फिर नैशनलिज्म

वर्गवाद का अन्तर्जातीय संघ १९४३ ई० में बन्द कर दिया गया और समस्त संसार में भ्रातृभाव उत्पन्न करने का रागअलापना भी छोड़ दिया गया । इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि अन्तर्जातीय भव्यभावना रूस से सदा के लिए विदा हो गई और उसका स्थान योरुप के पूंजीपतियों के नेशनलिज्म ने ले लिया । इसका उदाहरण यह देखने में आया कि वर्तमान युद्ध के शुरू हो जाने पर जब १९४० ई० में यह प्रश्न उठा कि युकरेन, जार्जिफ,तुर्किस्तान,तातार और साइबेरिया निवासियों की शिक्षा का माध्यम क्या हो तो सोवियत सरकार ने उत्तर दिया कि 'यद्यपि ये सभी राज्य अपना-अपना प्रजातन्त्रीय शासन रखते है फिर भी इन जातियों की शिक्षा उनकी मातृभाषा में न होकर रूसी भाषा ही में होनी चाहिए" । रूसी भाषा इन जातियों के लिए ऐसी ही विदेशी भाषा है जैसे हिन्दुस्तानियों के लिए अंग्रेजी ।

जब कोई जाति नेशनलिज्म की ओर चलती है तो उसकी मनोवृत्ति भी उसी प्रकार की हो जाती है जैसी धन और राजसत्ता के अभिमानियों (Imperialist) की होती है। आज सोवियत रूस में यही चिह्न व्यक्त हो रहे हैं।

(१) जब वेन्डेल विल्की (Wendall Willkie) ने यह प्रश्न उठाया कि रशिया का अपने पड़ोसी देशों (तुर्किस्तान आदि) से क्या सम्बन्ध है ? तो सोवियत के आर्गन 'प्रावदा' (Pravda) ने गुर्राते हुये, यह उत्तर दिया कि यह हमारी भीतरी बातें हैं, इन का तुम से क्या सम्बन्ध ? क्या यह उसी प्रकार की बात नहीं है, जैसी कि चर्चिल ने विल्की को कही थी, जब वह हिन्दुस्तान में आना चाहते थे। फिर बतलाओ कि चर्चिल और स्टैलिन में क्या अन्तर रहा ?

(२) हेरी पोलिट (Hary Politt) और उसके कुछ एक साथियों ने प्रस्ताव करना शुरू किया था कि इंग्लैण्ड और अमरीका मध्यस्थ बनकर रूस और पोलैंड में मेल करा देवें। पोलिट ने इंग्लैण्ड के नागरिक होने से इस प्रकार की बात कही थी, परन्तु उसे सोचना चाहिए था कि ऐक रूस निवासी भी कह सकता है कि स्टैलिन मध्यस्थ बन कर इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान के मामले को सुलझा देवें। यदि चर्चिल कह सकता है कि इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान का मामला उनका घरेलू मामला है तो स्टैलिन क्यों नहीं कह सकता कि पोलेण्ड का मामला भी उसका घरेलू मामला है। यह उत्तर और प्रत्युत्तर तो ठीक माने जा सकते हैं, यदि चर्चिल और स्टैलिन दोनों को एक श्रेणी का व्यक्ति माना जाये, परन्तु यदि स्टैलिन वर्गवादी या कम से कम पूंजीपतित्व मनोवृत्ति के विरुद्ध होता तो जरूर

इस देश के मामले में हस्तक्षेप करता, परन्तु स्टैलिन का अब वर्गवाद से उतना ही सम्बन्ध है जितना वह उसकी पूंजीपतित्व मनोवृत्ति का साधक है।

सोवियत रशिया एक कामनवैल्थ के रूप में

अभी कुछ दिन हुए जब स्टैलिन की सरकार ने घोषणा की थी कि रशिया के समीपवर्ती देश जो प्रजातन्त्र राज्य हैं, सोवियत कामनवैल्थ के अंग हैं। उन्हें स्वतन्त्रता है कि अपना राज्य जिस प्रकार चाहें करें और उन्हें यह भी स्वतन्त्रता है कि चाहें तो "कामनवैल्थ" से पृथक् भी हो सकें परन्तु 'डेवीज' ने इसका वास्तविकता प्रकट की है। इनकी स्वतन्त्रता कागजी अथवा कथनमात्र है। स्टैलिन या रशियाका कामनवैल्थ कभी यह सहन नही कर सकता कि वे उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ कर सकें। उनकी स्वतन्त्रता ऐसी हीथी जैसीइस देशकी कथित स्वतन्त्रता, स्वतन्त्र हैं परन्तु स्वतन्त्रता को प्रयोग में नहीं ला सकते। सच तो यह है कि सोवियत रशिया ने यह कामनवैल्थ का विचार इंगलैण्ड से लिया है। रूस ने देखा कि इग्लैंड एक छोटा सा टापू कामनवैल्थ के सहारे पृथ्वी के तीन बड़ोंमें गिना जाता है तो रूस क्यों न १६ स्वतन्त्र राज्यों का कामनवैल्थ बना कर इंगलैण्ड से भी चार कदम आगे चले। इससे पृथ्वी के एक संगठन में उसके वोट भी बढ़ सकते हैं। अस्तु। इन सब बातों पर विचार करने से प्रकट होता है कि वर्तमान स्टैलिन का रूस न तो प्रजातन्त्र राज्य ही है, न श्रेणीरहित समाज ही है, न अन्तर्जातीय कोई संगठन ही है इसलिए उसे वर्गवादी समाज नहीं कह सकते। वह पूर्णतया पूंजीपति राज्य भी नहीं है। उसे

बर्नहैम की परिभाषा में प्रबन्धक राज्य (Managerial state) कह सकते है।

रशिया प्रबन्धक राज्य (Managerial state) है

प्रबन्धक राज्य न तो वर्गवादी ही कहा जा सकता है न पूंजीपति ही। प्रबन्धक राज्य और वर्गवादी राज्य में समता यह है कि दोनों में निजी सम्पत्ति रखना, चाहे वह उपज की हो या विभाजन से प्राप्त हुई हो या परिवर्तन से, निषिद्ध ठहराया गया है और समस्त कारखाने तथा अन्य आर्थिक व्यवसाय का स्वामित्व राज्य को प्राप्त होता है या राज्य द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। और विषमता यह है कि वर्गवादानुसार राज्य प्रजा की सत्ता होता है परन्तु प्रबन्धक राज्य में, स्वयं राज्य और उसकी आर्थिक व्यवस्था जिसका जातीयकरण (Nationalised) हो चुका है, प्रजा के अधिकार में नहीं होती किन्तु एक छोटे से गुट्ट के हाथ में होती है। वह गुट्ट चाहे अनियन्त्रित शासकों का हो चाहे प्रबन्धकर्ताओं का हो। उसी गुट्ट का सर्वाधिकारित्व (Dictatorship) होता है।[1] इस समय का रूस का शासन भी स्टैलिन और उसके मुट्ठी भर साथियों ही के हाथ में है, प्रजा का उसमें कोई अधिकार नही। अस्तु। इस अध्याय में हमने देख लिया कि रूस अब वर्गवादी नहीं रहा और यह कि वर्गवाद अव्यवहार्य भी है।

---

(1) The Managerial Revolution by *James Burnham*
(*An American social writer*)

स्वयं मार्क्स मार्क्सवादी नहीं था

कार्लमार्क्स ने, इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि संसार के लाभार्थ जो नियम उसने अच्छे समझे उन्हें प्रचलित करने का आदेश दिया। परन्तु यह बात समझ लेनी चाहिए कि वह कोई सम्प्रदाय प्रचारक नहीं था और न उसने कोई सम्प्रदाय प्रचलित करने का यत्न किया । काम में आने से यदि मालूम हो जावे कि वर्गवाद में कोई त्रुटि है तो उसे उदारता के साथ छोड़ देने और अच्छे नये नियमों के ग्रहण करने के लिए सर्वथा और सदैव तय्यार रहना चाहिए । मार्क्सवाद को कोई सम्प्रदाय ठहरा कर ग्रहण और त्याग दोनों नियमों को निरर्थक सिद्ध करने का यत्न करना, मनुष्यत्व को नीचा करना है । मार्क्स ने स्वयं अपने प्रचलित किये नियमों को कभी सम्प्रदाय नही माना था । इसलिए उसने अपने जीवनान्त में कहा था "Thank God I am not a Markist" [1] अर्थात् "ईश्वर को धन्यवाद है कि मै मार्क्सवादी नही हूं" । इसका अभिप्राय यह है कि आगे अनुभव के आधार पर वह अपने प्रचारित नियमों में संशोधन करने के लिये तय्यार था । इसी का अन्यों को भी अनुकरण करना चाहिये ।

---

(1) Socialism reconsidered by
M. R. Massani P. 54 and 55.

ग्यारहवां अध्याय
"मशीनयुग और पूंजीवाद"

पूंजीवाद के दोष

(१) पूंजी जब मशीनों और मशीन वाले कारखानों की वृद्धि में लगती है तब देश के लिए हानिकारक सिद्ध होती है क्योंकि उससे बेकारों की संख्या में वृद्धि होती है। उदाहरण में यहां हम इंग्लैण्ड को उपस्थित करते हैं। उसके बेकारी के अंकों को देखिये:—

१९२० ई० में बेकारों की संख्या १० लाख थी।
१९२२ ई० में यह संख्या १६ लाख हो गई।
१९२८ ई० में यह संख्या घटकर १२ लाख ९० हजार रह गई परन्तु इस घटने के कारण मालूम नहीं हो सके।
१९२९ ई० में १२ लाख ६२ हजार।
१९३० ई० में १९ लाख ९४ ,,
१९३१ ई० में २६ ,, १७ ,,
१९३२ ई० में २८ ,, ४६ ,,
जनवरी १९३३ ई० में २९ लाख ५५ हजार।[1]

---

(2) Economist Modern Business by
N. V. Hope P. 211 & 212.
(Capitalism at Cross Road)

(२) प्रोफेसर हेनरी क्ले (*Prof. Henry Clay*) ने एक अंकगणनासंघ (Statistical Society) में १९२५ ई० में प्रधान पद से भाषण देते हुए कहा था कि ब्रिटेन में ९४·५ प्रति शतक आबादी की आय ५६ फीसदी है और ५·५ फीसदी की ४४ प्रति शतक है। कारखाने के स्वामित्व की दृष्टि से ९६'२ आबादी का फीसदी १७·२२ कारखानों के मालिक हैं। और बाकी ३·८ फीसदी ८२·७८ के मालिक हैं।[१] ये अंक प्रकट करते हैं कि इंग्लैण्ड में किस प्रकार पूंजीपतियों का देश के कारखानों में आधिपत्य है। यही कारण बेकारी की संख्या वृद्धि का है। क्या समाजवाद से यह बेकारी कम हो जायेगी? होप महाशय का कहना यह है कि समाजवाद वास्तव में है क्या? इसी के समझने में विभिन्नता है।

समाजवाद के समझने में मतभेद

समाजवाद क्या है इसको प्रकट करने के लिये १९२४ ई० में डेन ग्रीफिथ्स ने एक जगह लिखा था कि यह विज्ञान मजहब एक प्रकार की प्रवृत्ति, एक पद्धति, एक फिलोसफी, एक विशेष प्रकार का वातावरण पैदा करने का साधन और एक प्रोग्राम है।[२]

(२) सी० जी० टामीन की सम्मति है कि समाजवाद ईसा की शिक्षाओं का क्रियात्मक प्रकटीकरण है।

(३) एच० सी० चारलेटन ने प्रकट किया है कि यह एक प्रकार का समाज है जो पृथिवी पर स्वर्गराज्य की स्थापना करेगा।

---

(3) Economist Modern Business P. 222

(2) What is Socialism by Dan Griffiths.

(४) जो लोग इस वाद के विरुद्ध हैं उनका कहना है[1] कि यह एक यत्न है जिसके द्वारा एक ऐसा विधान बनाया जावे, जिसके द्वारा एक अवैज्ञानिक व्यक्ति सफलताप्राप्त व्यक्ति प्रमाणित हो जावे।

मार्क्स और पूंजीवाद

कार्लमार्क्स ने १८४२ ई० में एक पत्र जर्मन भाषा में, जिसका नाम (Rheinische Zsctung) था, निकाला और उसका स्वयं सम्पादक बना। परन्तु वह पत्र भी बन्दकर दिया गया और वह जर्मनी से निकाल भी दिया गया। दुबारा जून १८४६ ई० में वह पत्र फिर जर्मनी में निकाला गया। इसके बाद वह फ्रांस गया परन्तु वहां से भी जुलाई ४६ में निकाल दिया गया। तब वहां से वह लण्डन गया और मृत्यु पर्यन्त वहीं रहा। दो बातें हैं जिनकी ओर मार्क्स ने कभी ध्यान नहीं दिया—(१) उसने साफ शब्दों में कभी यह स्वीकार नहीं किया कि पूंजी उत्पादन का एक साधन है। यह उसने दबी जुबान से अवश्य स्वीकार किया है कि मशीनरी के प्रयोग से उत्पादन शक्ति अत्यन्त बढ़ जाती है परन्तु वह नही चाहता कि मशीन के मालिक को एक पाई भी पारितोषिक दिया जावे। (२) वस्तुओं के मूल्य नियत करने में उसने कभी "मांग" को ध्यान में नही रक्खा। जो किसी ठीक परिणाम पर पहुंचना चाहता है उसे मांग और सप्लाई दोनों बातों की ओर ध्यान देना पड़ेगा।

मार्शल की प्रसिद्ध कहावत है कि कैंची के दो फल होते हैं। और जब दोनों काम करते हैं तभी कैंची का काम पूरा होता है

(1) Modern Business by N. V. Hope p-214

परन्तु मार्क्स एक ही फल सप्लाई से काम लेकर कैंची का काम पूरा करना चाहता था।[1]

(२) इतिहास का केवल प्राकृतिक होने का विचार तथा श्रेणी संघर्षण का उत्तेजन, ये दोनों बातें भी "होप" के अनुसार ठीक नहीं थीं। उसने ठीक लिखा है कि मजहब, भक्ति और देशभक्ति, शहीद होने का उत्साह और आत्मीयता केवल प्राकृतिक घटनाओं से सिद्ध नहीं किये जा सकते। केवल प्रकृति ने किस प्रकार बुद्ध,ईसा, लूथर, टाल्स्टाय, शंकर और दयानन्द को, ऐसे व्यक्ति बना दिये जैसे वे थे।[2]

कुछ एक अर्ध सचाई

पश्चिमी शिक्षा और सभ्यता से प्रभावित मनुष्य जाति का एक बड़ा भाग, एक ऐसे खड्डे की ओर जा रहा है जिस की गहराई का पता नहीं, उसका कारण पश्चिमी विज्ञान की यह अर्ध सचाई है जो उसने विज्ञान के नाम से प्रकट की है और जो,निम्न वाक्यों से प्रकट होती हैं:—(१) बलवानों का जीवित रहना, (२) निर्बलों का रसातल को चला जाना तथा (३) जीवन के लिये संघर्षण करना।[3] इस अर्ध सच्चाई के ज्ञान ने

(1) Modern Business by N. V. Hope 215-217

(2) Do p-220

(3) अंग्रेजी भाषा में वाक्य इस प्रकार है:—

(1) Survival of the fittest (2) The Weakest must go to the down and (3) The selfish struggle for existance.

लोगों में आपा-धापी करने की भावना पैदा कर दी, जिससे अन्यों का चाहे कुछ हो परन्तु वे स्वयं जीवित रहें। परन्तु इन संघर्षणों से वे स्वयं भी जीवित नहीं रह सकते। एक उदाहरण से यह बात अच्छी तरह से समझी जा सकेगी। कल्पना करो कि एक तालाब में १०० मछलियां हैं और उनमें यही बलवानों के बाकी रहने वाली सभ्यता प्रचलित है। फल यह होगा कि पहले सबसे निर्बल मछली मारी जायेगी और उसे, उससे बलवती मछलियां हज्म कर लेंगी। अब जो इसके बाद सबसे कमजोर मछली रह गईहै उसकी बारी आवेगी और वह भी इसी प्रकार से मारी जाएगी। फिर कमजोर मछली रह गई है उसकी बारी आवेगी और वह भी इसी प्रकारसे मौत के घाट उतरेगी। इसी क्रम को जारी रखने का फल यह होगा कि अन्त की सबसे बड़ी और शक्तिशालिनी मछली बाकी रह जायेगी। बाकी सब उपर्युक्त भांति एक दूसरे का ग्रास बनती रहेंगी। परन्तु अब प्रश्न यह है कि क्या उस तालाब में यह अन्तिम मछली जीती जागती बाकी रहेगी? कदापि नहीं, यह इसलिये मर जायेगी, कि अब उसके लिये खाने को कोई मछली बाकी नहीं रही क्योंकि उसका अभ्यास मछलियों ही के खाने का बन चुका था। अब सोचना यह है कि यह तालाब क्यों मछलियों से खाली हो गया? उत्तर स्पष्ट है कि उपर्युक्त अर्ध सचाई ने इस तालाब की मछलियों का सफाया कर दिया। [illegible] ने इस अर्ध सचाई को न छोड़ा तो उसका भी

मछलियों की तरह से सफाया हो जावेगा। असली सचाई जिससे मनुष्य समाज का अंग विशेष नहीं अपितु सभी अंग जीवित रहें यह है कि सबके जीवित रखने के लिये निस्वार्थ होकर प्रयत्नवान् होना"।[१] वर्गवाद ने जो श्रेणीसंघर्ष का नियम बना रखा है वह भी इस सुनहरे नियम के विरुद्ध है।

---

(१) आर्यसमाज के १० नियमों में से नवां नियम यह है कि "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए अपितु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।"

बारहवां अध्याय

वैदिक शिक्षा

आदर्श समाज किस प्रकार बन सकता है ?

भारतीय संस्कृति और सभ्यता का प्रारम्भ जगत् के प्रारम्भ से ही होता है। जिस समय देश अनेक जातियों में विभक्त नहीं थे अपितु समस्त ससार एक ही जाति के रूप में था, ससार की एक मात्र (मनुष्य) जाति किस प्रकार शान्ति के साथ रहती हुई फूली और फली, इसके लिये भारतीय सभ्यता का मूल नियम (बुनियादी उसूल) यह था कि "सब मनुष्य (बिला लिहाज, रंग, जाति, और नस्ल के) भाई-भाई हैं, उनमें कोई छोटा नहीं, वे सब मिलकर सौभाग्य की वृद्धि के लिये उन्नति शील हों, उन सबका पिता शक्तिसम्पन्न सर्वरक्षक और सबको मर्यादा में रखने वाला परमेश्वर और अनेक प्रकार के धन-धान्य देने वाली पृथिवी उनकी माता है।[1] भाव इसका यह है कि समस्त पृथिवी-निवासी एक विशाल परिवार के रूप में है, जिनमें न कोई छोटा है न कोई बड़ा, सब भाई-भाई हैं। इस भ्रातृभाव को स्थिर रखने के लिये आवश्यक है कि वे समझें कि वे एक माता और पिता के पुत्र हैं। आस्तिकवाद की अनिवार्य आव-

---

(१) अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषा सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः॥
(ऋग्वेद ५। ६०। ५)

श्यकताओं में से एक आवश्यकता यही है कि उसके द्वारा सबको एक पिता का पुत्र समझकर भाई-भाई के पारस्परिक सम्बन्ध की स्थापना होती है। वेदो में ये उच्चभाव-जगह-जगह मिलते हैं। एक और जगह वर्णित है कि करशफ=निर्बल और विशफ= प्रबल (दोनों) का, प्रकाश पुंज (परमात्मा) पिता और पृथिवी (उनकी) माता है। (ऐसा समझते हुए) विद्वानो ने (पुरुषार्थ करने का) जैसा चक्र चलाया है उसे फिर काम में लाओ।[१] फिर एक जगह पारस्परिक प्रेम की स्थापना के लिये कहा गया है-"जो कोई सम्पूर्ण चराचर जगत् को परमात्मा ही में देखता है और समस्त जगत् में परमेश्वर को देखता है। इससे यह निन्दित नहीं होता।[२] यह शिक्षा कितना महत्व रखती है। जब मनुष्य अपने प्यारे प्रभु को समस्त प्राणियों में (व्यापक) देखता है तब प्रत्येक प्राणी के शरीर उसके लिये ईश्वर के मन्दिर के रूप में होते है। भला कौन है जो अपने प्यारे के मन्दिर को स्वयमेव तोड़े और फोड़े।[३] इस शिक्षा से मनुष्यों में यह भावना पैदा होती है कि किसी भी प्राणी को तकलीफ

(२) कर्शफस्य विशफस्य द्यौः पिता पृथिवी माता।
यथाभिचक्र देवास्तथापकृणुता पुनः ॥ (अथर्ववेद ३।६।११)

(३) यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ (यजुर्वेद ४०।६)

(४) अपने प्रियतम का मन्दिर कितना प्यारा होता है, इसको प्रकट करने के लिये एक उर्दू के कवि ने लिखा है:—

न जाऊंगा कभी जन्नत में मैं न जाऊंगा।
अगर न होवेगा नकशा तुम्हारे घर का सा ॥

अर्थात् प्रेमी जन्नत (स्वर्ग) से अपने प्रियतम के घर को तरजीह देता है।

नहीं देनी चाहिये। इसी प्राणियों के प्रेम को लक्ष्य में रखते हुये एक अमरीकन विद्वान् ने लिखा है—"बड़ी चर्चा शत्रु को कुचल देने और बरलिन तथा टोक्यो की ओर चलने और बिना किसी शर्त के आत्मसमर्पण की बात कही जा रही है परन्तु एक रत्ती भर भी बात दया और माफी की नहीं कही जाती है। *हम पाश्चात्यों में इसका अभाव ही है। बल, हिंसा, बदला* लेने की इच्छा अहमन्यता, घमंड और अविकार, इससे हम खूब परिचित हैं। और इनको हमने दूसरों में भी रोग की तरह फैलाया है जो उनके हमारे अनुकरण करने से प्रकट हैं। *(जापान को देखो) परन्तु दया, अनुकम्पा, प्रेम, नम्रता, आत्म-*त्याग और शान्ति, इन्हें हम बहुत थोड़ा जानते हे। और ये अन्तिम सिद्धान्त ही, पहले नहीं, संसार को मौत से बचा सकते हैं। कौन (इस बात से) दुःखी हो सकता है कि अब तुलादण्ड पश्चिम से पूर्व की ओर झुक रहा है। पश्चिमी राज्य अपने पापों से नष्ट-भ्रष्ट होगे और चीन और हिन्दुस्तान मनुष्यों के अन्तिम ध्येय प्राप्त कराने का भार अपने ऊपर लेने की तय्यारी करेंगे।[१]

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि भारतीय सभ्यता के मौलिक नियमों को पश्चिमी विद्वान् वर्तमान युद्ध (१९४५) की वीभत्सता को देखकर, अपनाने के लिये तय्यार हो रहे हैं। सार्वदेशिक प्रेम और भ्रातृभाव के अपनाये बिना दुनिया शान्ति की जगह नहीं बन सकती।

---

(१) देखो *Unity in Aryamitra 30-9-43.*

एच० जी० वैल्स और संसार की शान्ति

२५-४-४५ को हुई सैनफ्रान्सिस्को कान्फ्रेंस भी, इस जरूरत को प्रकट करती है कि संसार का संगठन बनाये बिना शान्ति की स्थापना नही हो सकती। "ओलफ स्टेपलेंडन" (Olaf Staplendon) ने एक नाविल लिखकर आगे एक हजार वर्ष का हाल लिखा है। "ऐल्डस हक्सले" (Aldous Huxlay) ने अपने एक ग्रन्थ में विश्व की शान्ति का वर्णन किया है।[१] "कामल किले मेरियन "एक फ्रेंच ज्योतिषी ने अपनी ज्योतिषी के हिसाब से बतलाया है कि सन् २३५० ई० तक ससार में पूर्णतया शान्ति की स्थापना हो जायेगी। उस समय एक नस्ल, एक जाति और एक ही धर्म हो जायेगा।

(२) पुराने जातीय संघ (League of Nations) के मन्त्रि-मण्डल के मुख्य मन्त्री डाक्टर फिलिप रेवन ने १६४०से २१०६ तक के हालत की एक स्वप्नपुस्तक लिखी थी।[२] एच. जी. वैल्स ने उसी के आधार पर एक पुस्तक लिखकर उसमें सन् वार उपर्युक्त काल का विवरण दिया है।[३] उनका अत्यन्त सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

---

(1) Study of a brave New world by Aldous Huxlay.

(2) Dream Book by Doctor Philip Raven.

(3) The Shape of things to come by H. G. Wells.

१८४० से १९५० तक लड़ाई जारी रहेगी।[1]

१९५० से १९६० तक आवागमन सघ(Transport Union) वनेगा और व्यापार आकाश और समुद्र के द्वारा उसी की अनुमति से होगा।

१९६५ ई०मे उस सघ के ये कार्य होगे:—(१)आकाश और समुद्र का नियन्त्रण (२) सामग्री संग्रह (Supply) (३) व्यापार (४) शिक्षा नियन्त्रण (५) विज्ञापन नियन्त्रण (६) अन्य आवश्यक नियन्त्रण।

१९७३ ई. में बसरे में एक सम्मेलन होकर यह संघ दुनिया की सबसे बड़ी (Supieme) गवर्नमेंट ठहराया जायेगा।

१९७८-२०५९ तक—कार्य प्रणाली के सम्बन्ध में विचार होता रहेगा।

२०५९ ई. में मक्षोकी में एक और कांफ्रेन्स होकर संसार की राज्य प्रणाली को और रूप दिया जावेगा।

२१०६ ई. में संसार के राज्य का राजा प्रधान (King President) की नियुक्ति होकर शांति हो जावेगी।

कुछ एक और इसी प्रकार के मत

यह है वह विवरण जो वैल्स महोदय ने भावी संसार का दिया है। डैवीस ने एक पुस्तक में लिखा है कि भविष्य में जगत् का हाल क्या होगा:—

(१) डाक्टर रैबिन का ग्रन्थ इस लड़ाई के शुरू होने से पहले लिखा गया था। लड़ाई के शुरू होने के सम्बन्ध में उसकी पेशीनगोई पूरी हो गई। देखें समाप्ति के सम्बन्ध में पूरी होती है या नहीं। (लेखक)

१९६०ई.में मजदूरों के काम के केवल ३ घण्टे रह जावेंगे।

१९७५ ई. में स्त्री पुरुष संगम के विचार (Sexual feeling) जाते रहेंगे।

१९८५ ई. में जुर्म करना बीमारी समझी जाने लगेगी और उससे उस तरह बचना चाहेंगे जैसे रोग से बचने की इच्छा किया करते हैं।

२००० ई. में यह बीमारी जाती रहेगी और जगत् निर्दोष हो जावेगा। तब सन्तति निग्रह होगा और राज्य की ओर से यत्न किया जावेगा कि नियत संख्या से अधिक आबादी न होने पावे। उस समय इग्लैण्ड की आबादी ,१. रह जायेगी और कन्जर्वेटिव-इज्म समाप्त हो जावेगा।

४००० ई. में एक ही जाति रह जावेगी।[1]

परिणाम

रैवन, वैल्स और डेवीस आदि की उपर्युक्त पेशीन-गोइयां ठीक सिद्ध हों या न हों परन्तु एक बात जो इन सबकी तह में पाई जाती है वह है कि यह इन सबका निष्कर्ष वही है जो भारतीय संस्कृति और सभ्यता का मूल है अर्थात् समस्त संसार भ्रातृभाव की लड़ी में पिरोया जावे।

आदर्श समाज बनाने के लिए दो बातों का स्वीकार करना आवश्यक है

ऊपर का विवरण प्रकट करता है कि संसार के विचारकों की इच्छा जरूर आदर्श समाज बनाने की है। वह समाज किस प्रकार बने ? इसके लिए दो नियमों का स्वीकार कर लेना अनिवार्य है:—(१) पृथ्वी के विशाल समाज में मतभेद होना

---

(1) History of the future by. J L. Devies.

आवश्यक है। यह नियम वेद में इस प्रकार स्वीकार किया गया है कि 'मनुष्य के दोनों हाथ बराबर शक्ति वाले नहीं होते, एक गाय की दो बछिया बराबर दूध देने वाली नहीं होतीं, एक माता के दो पुत्र जो एक साथ ही उत्पन्न होते हैं बराबर शक्ति वाले नहीं होते और एक समाज के एक ही स्टेटस के दो व्यक्ति बराबर दान नहीं देते'।[1]

प्रकृति में जब तक उसके तीनों गुण (भाग) समता वाले रहा करते हैं तब तक प्रलय रहा करती है। जब उनमें विषमता आती है तभी जगत् बना करता है। जब यह जगत् बना ही विषमता से है तो इसके भीतर विषमता रहना स्वाभाविक है। समाजों में जो बहु पक्ष और अल्प पक्ष हुआ करते हैं वे भी मनुष्यों के भिन्न-भिन्न मत होने की बात प्रकट करते है। अस्तु। इस प्रकार मतभेद होने की सूरत में क्या करना चाहिए? इस सम्बन्ध मे वेद की शिक्षा यह है कि "पृथ्वी (कब) मनुष्यों की रक्षा करती है (जब वे अनेक भाषाओं और अनेक धर्मों के होने पर भी (इस पृथ्वी पर इस प्रकार से मिल कर रहा करते हैं। जैसे) एक घर में घर वाले मिल कर रहा करते है। उस समय पृथ्वी धन की सहस्रों धारा उसी प्रकार से दिया करती हैं जैसे गायें निश्चित रीति से दूध की अनेक धाराएं दिया करती हैं।[2]

---

(१) समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः,सम्मातरा चिन्न,समं दुहाते।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि,ज्ञाती चित्सन्तौ न समं पृणीतः॥
(ऋग्वेद १०—११७—९)

(२) जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्। सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती॥
अथर्ववेद १२।१।४५

और भी अनेक बातें संसार में विभिन्नता की हुआ करती है परन्तु मुख्य रीति से भाषा और धर्मों—कर्त्तव्यों के भेद ही हुआ करते हैं। यहां एक बात याद रखनी चाहिये कि वैदिक साहित्य में धर्म मजहब या रिलीजन के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ करता अपितु सदैव कर्त्तव्य के अर्थ में आया करता है। यहां भी इस दूसरे नियम में धर्म कर्त्तव्य ही के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

संसार का इतिहास प्रकट करता है कि जब भी मनुष्य मिलकर नही रहे तभी देश का पतन और समाज में अशान्ति हुआ करती है। राम-रावण, कृष्ण-कंस, कौरव-पांडव, पृथ्वीराज-जयचन्द, अलाउल हसन-जहांसोज और गजनी के उदाहरण हमारे सामने हैं। अमरीका मे वहां के गोरों और निग्रो में अशान्ति का हेतु मिलकर रहने की अनिच्छा ही है। योरुप में नैपोलियन, नैलसन, कैसर, हिटलर, मसोलिनी और चर्चिल आदि में युद्ध का कारण भी मनुष्यत्व का अभाव ही है।

आरम्भ में एक ही मनुष्य-जाति थी

बृहरण्यकोपनिषद् में, जो वेद के बाद सबसे प्राचीन ग्रन्थ शतपथ ब्राह्मण का एक भाग है, एक जगह इस प्रकार लिखा हुआ मिलता है:—"प्रारम्भ में एक ब्राह्मण वर्ण ही था। जब वह वर्ण एक होने से वृद्धि को न प्राप्त हुआ तब उसने श्रेय रूप क्षत्रिय वर्ण को बनाया परन्तु वह (ब्राह्मण वर्ण)क्षत्रिय वर्ण को बनाकर भी) उन्नत न हो सका तब उसने वैश्य वर्ण बनाया वह तब भी वृद्धि न कर सका तब शूद्र वर्ण को बनाया" इत्यादि।[1]

(१) बृहदारण्यकोपनिषद् पहला अध्याय, चौथा ब्राह्मण कंडिका १० से १३ तक।

(२) इसी प्रकार महाभारत में भी एक जगह लिखा है कि भीम ने युधिष्ठिर से कहा कि "प्रारम्भ में इस विश्व में एक ही वर्ण था, कर्म और क्रिया-विभेद से चार वर्ण हो गए"।[१]

(३) इसी प्रकार से भागवत में भी एक जगह लिखा मिलता है कि 'पूर्व में एक ही वेद और सब वाङ्मय में व्यापने वाला प्रणव—ओंकार और एक ही देव नारायण और एक ही अग्नि तेजस्वी वर्ण था"।[२]

(४) इस प्रकार समस्त वैदिक साहित्य में आमतौर से और उसके बाद के साहित्य मे कही २ यह बात खुले,शब्दों में अंकित मिलती है कि इस पृथ्वी पर प्रारम्भ में एक ही (आर्य) जाति थी। और उसी के लिए ऊपर कहा जा चुका है कि उनमें न कोई बड़ा था न छोटा, वे सब भाई ही थे। अस्तु। यह जाति किस प्रकार राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक उन्नति कर सके इसके लिए वैदिक साहित्य की शिक्षाओं को लक्ष्य में रखते हुए इस जाति के तत्कालीन नेताओ ने आश्रम और वर्ण की रचना की। चार आश्रम और चार ही वर्ण हैं। उनका यहां सक्षिप्त विवरण दिया जाता है:—

आश्रम व्यवस्था

मनुष्य का जीवन चार वैज्ञानिक विभागों में बांटा गया है जिनको चार आश्रम कहते हैं। (१) ब्रह्मचर्याश्रम=विद्यार्थी जीवन,(२) गृहस्थाश्रम=पारिवारिक जीवन,(३) वाना-

: (१) एकवर्णमिदं पूर्वं विश्वमासीद युधिष्ठिर। कर्मक्रिया-विभेदेन चातुर्वर्ण्यं प्रतिष्ठितम् ॥ (महाभारत शान्ति पर्व)

(२) भागवत स्कन्ध ६।१४

प्रस्थाश्रम=तपस्या और अपने को पवित्र, सहनशील और कठोरताओं के सहने योग्य बनाने का जीवन और (४) *संन्यासाश्रम* (Spiritual anchorite)=संसार की सेवा Honorary Public works और आत्म निरीक्षण करना मोक्ष=अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ स्वतन्त्रता प्राप्त करने का जीवन। यह वैज्ञानिक सोशलिज्म, *मनुष्य को नियमबद्ध, गौरवास्पद, पवित्र बनाते हुए* इस योग्य बना देता है कि वह सब कुछ ईश्वरार्पण कर दे। इनमें से पहला आश्रम, मनुष्य जीवन के चार उद्देश्यों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में धर्म को आचरण में लाने योग्य बनाता है।

धर्म के वास्तविक अर्थ

वैदिक साहित्य के न जानने वाले केवल अंग्रेजी पढ़े लिखे योरोपियन और उन्हीं का अनुकरण करने वाले कुछ एक देशी लोग, जिन्हें उचित रीति से सरजान वुडरफ ने "इंग्लैंड के मस्तिष्क की सन्तति" (Mindborn Sons of England) कहा है। धर्म शब्द को *मजहब या रिलीजन का पर्याय कहा* करते हैं। यह उनकी भारी भूल है। मजहब के अर्थ रास्ते के हैं। रिलीजन यह शब्द लैटिन भाषा के (Religes) शब्द से बनाया गया है इसके *अर्थ एक जगह* ध्यान रखने (To care और दूसरी जगह (Bind together) इकट्ठा करके बांधने के मिलते हैं। ग्रीक भाषा के शब्द Alogo के अर्थ जो इस शब्द से सम्बन्धित है, (To held) ध्यान देने ही के हैं। धर्म शब्द इन दोनों से *सर्वथा भिन्न है* इसका एक अर्थ *तो यह है:—*

(१) धारणा करने से धर्म बना है, ऐसा कहा जाता है क्योंकि प्रजा इसे धारण करती है इसलिये जो धारणा से संयुक्त

है, जिनसे दुनिया स्थिर रहती है।[1] अतः इसका अर्थ है जो मनुष्य के लिये जिन कर्त्तव्यों का पालन करना आवश्यक है उन्हीं का नाम धर्म है। इसलिये एक बात कहा गया है जो रक्षा किया हुआ धर्म अर्थात् कर्त्तव्य के पालन करने वाले की धर्म रक्षा करता है और जो धर्म का हनन करते हुए अपने कर्मों का पालन नहीं करते उनको धर्म नष्ट किया करता है।[2] जब मनुष्य अपने कर्त्तव्यों का पालन करता है तो उसे सफलता का जीवन प्राप्त होता है परन्तु कर्त्तव्य कर्म के पालन करने में अवहेलना करने से आवश्यक है कि उसे नष्ट होना पड़ेगा।

(२) वैशेषिककार ने लोक और परलोक दोनों में उन्नत होने से, किसी व्यक्ति को धर्मानुरक्त करने वाला लक्षण है।[3]

(३) मनु ने धर्म को १० लक्षण वाला कहा है।[4] अर्थात् (१) धृति=दृढ़ता के साथ कर्त्तव्य का पालन करना, (२) क्षमा=दण्ड देने की योग्यता रखते हुए भी माफ कर देना क्षमा कहलाता है. (३) दम=मन का निग्रह, (४) अस्तेय=चोरी न करना, (५) शौच=पवित्रता, ६) इन्द्रियनिग्रह (७) धी=बुद्धि को उत्कृष्ट बनाना. (८, विद्या=ज्ञान प्राप्त करना, (९) सत्य, (१०)

१—धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।
यत्स्याद्धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥
महाभारत कर्ण पर्व ६९।६४ तथा शान्तिपर्व १०९।११

२—धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः (मनुस्मृति)

३—यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। (वैशेषिकदर्शन १।२)

४—धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥मनु॰

अक्रोध । अस्तु, वैदिक साहित्य में धर्म का यह रूप है । इसकी मजहब या रिलीजन के साथ तुलना करना अपने को भ्रान्ति में डालना है । यह धर्म है जिसके आचरण में लाने की योग्यता पहले ,ब्रह्मचर्य) आश्रम में मनुष्य प्राप्त किया करता है ।

गृहस्थाश्रम

इस दूसरे आश्रम में, उन चार जीवनोद्देश्यों में से, 'अर्थ और काम'' की पूर्ति, मनुष्य किया करता है अर्थात् धर्मपूर्वक धनोपार्जन करना और धर्मपूर्वक ही विवाह करके सन्तान पैदा करना ।

वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम

इन आश्रमों में, मनुष्य, जीवनोद्देश्य की चार बातों में से, अन्तिम मोक्ष प्राप्ति के साधनों को काम में लाता है वानप्रस्थ, जनता की सेवा शिक्षा के द्वारा किया करता है । बिना किसी प्रकार के फीस और बिना किसी प्रकार का दूसरा टैक्स वसूल किये, विद्यार्थियों को अपने सम्पर्क में रखकर शिक्षा दिया करता है जिससे विद्यार्थियों के विचार और आचार दोनों ठीक हो सकें । संन्यासी देखता है कि तीनों आश्रम वाले अपने-अपने कर्त्तव्यों का ठीक रीति से पालन करते है ।

आश्रम और धनोपार्जन की मर्यादा

इन चार आश्रमों में से तीन आश्रम ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम वाले धन नहीं पैदाकर सकते इनके प्रत्येक कार्य निष्काम, केवल कर्त्तव्य का पालन करने और सेवा के उद्देश्य से हुआ करते हैं । इन आश्रम वालों को धनोपार्जन के उद्देश्य से किसी प्रकार का कोई पेशा करना निषिद्ध ठहराया गया है । केवल एक आश्रम गृहस्थ है जिसमें धनोपार्जन करने

का आदेश दिया गया है, वह किस प्रकार धन पैदा करता है इसके लिये चार वर्ण नियत किये गये हैं।

गृहस्थ आश्रम के चार भेद

आश्रम व्यवस्था पर विचार करने से प्रकट होता है कि गृहस्थाश्रम के चार भेद किये गये हैं जिनको ४ वर्ण कहते हैं। उनका यह विभाग धनोपार्जन-प्रकार अथवा वृत्ति पर निर्भर है। इसका स्पष्टीकरण वर्णों के कर्त्तव्य पर विचार करने से हो जाता है:—

वर्णों के कर्त्तव्य

मनुस्मृति के अनुसार चारों वर्णों के कर्त्तव्य इस प्रकार हैं:-
(मनु० १।८८-९)

संख्या	वर्ण	लोक संबंधी कर्तव्य जीविका की उपलब्धि के लिये	परलोक संबंधी कर्म
१	ब्राह्मण	१. वेद पढ़ाना २.यज्ञ कराना ३. दान लेना	१ वेद पढ़ना २. यज्ञ करना ३. दान देना
२	क्षत्रिय	राज्य संबंधी सेवा, जिसमें देश की रक्षा आदि सभी कार्य शामिल हैं।	,, ,,
३	वैश्य	कृषि,व्यापार,पशुरक्षा आदि	,, ,,
४	शूद्र	शारीरिक परिश्रम संबंधी कार्य जिसमें वे समस्त पेशे शामिल हैं जो शारीरिक परिश्रम से किये जाते हैं।	,, ,,

इन विभागों पर दृष्टि डालने से साफ जाहिर हो जाता है कि परलोक (ईश्वर प्राप्ति या आत्मोन्नति) सम्बन्धी कार्य मनुष्य मात्र के लिए एक ही प्रकार के हैं उनमें किसी प्रकार का भेद नहीं है। भेद केवल धनोपार्जन करने की विधियों मे है। अर्थात् ब्राह्मण अध्यापनादि कार्य करके अपने निर्वाह योग्य धन उत्पन्न करता है, क्षत्रिय राज्य सम्बन्धी कार्य करके, वैश्य केवल अपने निर्वाह के योग्य ही नहीं अपितु उससे अधिक धन पैदा करता है जिससे राष्ट्र के भी काम चल सकें और देश धन धान्य से हराभरा रहे।

शूद्र को शारीरिक परिश्रम से प्रायः प्राप्त हो उतना धन हुआ करताहै जितना उसके निर्वाह के लिये आवश्यक होता है।

वर्णभेद जन्मपरक नहीं

पहिले तीसरे और चौथे आश्रमस्थ नर-नारियों का कोई वर्ण नहीं होता इसलिये कि उनके लिए धनोपार्जनार्थ कोई पेशा करना निषिद्ध है। केवल एक दूसरा आश्रम गृहस्थ है जिसमें धन पैदा करना विहित है। वर्ण वृत्ति पर ही निर्भर होता है जैसा कि कहा जा चुका है।

वर्णों का निश्चय कब होता है ?

ब्रह्मचर्य को समाप्त करके जब ब्रह्मचारी गुरुकुल से वापिस हुआ करता था तब वापिस होने से पहिले उसका वर्ण आचार्य द्वारा निश्चित हुआ करता था* ब्रह्मचर्य की कम से कम अवधि

---

* आचार्यस्त्वस्य यां जाति विधिवद्वेदपारगः। उत्पादयति साविञ्या नित्या साजरामरा ॥मनुस्मृति॥ अर्थात् वेदज्ञ आचार्य इस ब्रह्मचारी की जो जाति (वर्ण) विधिपूर्वक सावित्री द्वारा बनाता है वही अजर और अमर है॥

२४ वर्ष की नियत है। अतः स्पष्ट है कि २४वे वर्ष की समाप्ति अथवा २५वें वर्ष के प्रारम्भ में वर्ण का निश्चय हुआ करता था कि वह ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अथवा शूद्र किस वर्ण के कार्य-पूर्ति के योग्य हुआ। उससे पहिले उसका कोई वण नहीं होता और न हो सकता था। जब वर्ण का प्रारम्भ,कम से कम २४वें वर्ष में हुआ करता है तब उसको जन्म से कहने या मानने के लिये, यही कहा जा सकता है, कि ऐसा करने वाले, वर्ण की मर्यादा को या तो जानते नहीं, यदि जानते हैं तो जान बूझकर वास्तविकता के विरुद्ध कहते हैं। गीता में भी कृष्ण महाराज ने, वर्णों की रचना गुण और कर्मों ही से हुआ करती है, ऐसा ही माना है +।

इन वर्णों को गृहस्थाश्रम के चार भेद ही समझना चाहिये इससे अधिक न इनका कोई महत्त्व है और न अन्य आश्रमों से सम्बन्ध।

प्रत्येक वर्ण की श्रेष्ठता

ब्राह्मण की श्रेष्ठता ज्ञान का भण्डार होने से होती है। क्षत्रिय की श्रेष्ठता अन्य वर्णों की अपेक्षा अधिक बल का पुंज होने से। जो वस्तुएं विभिन्न श्रेणी की होती हैं उनमें दरजों का भेद नहीं हुआ करता। यह बात प्रकट है उदाहरणों से समझी जा सकती है। कल्पना करो एक घड़ी है और दूसरी मेज है तो ये दोनों चीजें विभिन्न श्रेणी की हैं इसलिए इनमें यह प्रश्न नही उठ सकता कि घड़ी अच्छी है अथवा मेज। हां १० घड़ियों में यह पूछा जा सकता है कि इनमें कौन-सी घड़ी श्रेष्ठ है,अथवा १० मेजों में यह प्रश्न हो सकता है कि सबसे अच्छी कौनसी है क्योंकि १० घड़ियां अथवा १० मेजें एक-एक श्रेणी की ही

+ चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। (गीता)

वस्तुएं हैं। कृषि व्यापार आदि में वैश्य की श्रेष्ठता है। शारीरिक परिश्रम करने में शूद्र अन्य तीनों वर्णों से श्रेष्ठ हुआ करता है इस प्रकार प्रत्येक वर्ण अपने निपुणतापूर्ण गुणों से श्रेष्ठ और अन्यों के गुणों की अपेक्षा अल्पज्ञ होने से, अन्यों से अश्रेष्ठ हुआ करता है।

वर्णों में छुटाई-बड़ाई नहीं हो सकती

कौन वस्तु किस से बड़ी और कौन किससे छोटी हुआ करती है, इस छुटाई-बडाई की नाप तोल एक श्रेणी के भीतर होने वाली वस्तुओं में हुआ करती है। इस बात को समझने के लिये आवश्यक है कि यह समझ लिया जावे कि वस्तुओं में दो प्रकार के भेद हुआ करते है; - (१) एक श्रेणी (Kind) का भेद, (२) दूसरा दर्जों Degrees) का भेद। जो वस्तुएं एक श्रेणी की हुआ करती हैं उनमें दर्जों का भेद होता और हो सकता है परन्तु इसी प्रकार चारों वर्ण प्रकार की दृष्टि से, चार भिन्न प्रकार (श्रेणियों) की चीजें हैं इसलिये यह प्रश्न नहीं उठ सकता कि ब्राह्मण बड़ा है या क्षत्रिय, या क्षत्रि बड़ा है या वैश्य इत्यादि– हां, अवश्य दस ब्राह्मणो, दस क्षत्रियों इत्यादि में यह पूछा जा सकता है कि उन दसों मे कौन ब्राह्मण अथवा दूसरे दस क्षत्रियों मे कौन क्षत्रिय श्रेष्ठहै क्योंकि दस ब्राह्मण या दस क्षत्रिय पृथक्-पृथक् एक ही श्रेणी की वस्तुएं हैं।

वर्तमान भेद का कारण

यहां स्वाभाविक रीति से यह प्रश्न उठ सकता है कि फिर वर्तमान काल में वर्णों के भीतर छुटाई-बड़ाई का भेद कैसे कहा जाया करता है? इसका उत्तर यह है कि वेद के बाद जो ग्रंथ स्मृति और गृह्यसूत्रादि लिखे गये हैं उनके द्वारा वर्णों के भीतर

छुटाई बड़ाई का भेद समाविष्ट हुआ और उसका कारण वेद की शिक्षाओं का तिरोहित होना ही कहा जा सकता है। वर्तमान मनुस्मृति आदि स्मृतियों और आश्वलायनादि गृह्यसूत्रों में अनेक बातें, ऐसी हैं जिनका समर्थन वेद द्वारा नहीं हो सकता। यहां उनके उदाहरण देने की जरूरत नही है। उन्हीं अवैदिक बातों में से एक यह भी है कि क्रमशः एक वर्ण दूसरे से बड़ा है। ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में भी जहां कहीं वर्णों के भीतर छुटाई बड़ाई का भाव प्रदर्शित होता है वह इन्ही ग्रन्थों के मतानुकूल वर्णित हुआ है। वेद में जो शरीर की उपमा से वर्णों का वर्णन हुआ है और जिसमें ब्राह्मण को शिर-स्थानी, क्षत्रिय को बाहु और वक्षस्थानी, वैश्य और शूद्र को उदर तथा पाद स्थानी कहा गया है, उनमें छुटाई-बड़ाई का कोई भाव नहीं है क्योंकि शरीर के प्रत्येक इन अवयवों शिर और बाहु आदि में श्रेणी का भेद है प्रत्येक वर्ण अपने कार्यक्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ और अन्य उसकी अपेक्षा से गौण हुआ करते हैं जैसा कि कहा जा चुका है। इस प्रकार प्रत्येक वर्ण अपने स्थान में उत्तम और अन्यों की अपेक्षा अन्य वर्ण वहां गौण हुआ करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक वर्ण में सद्भाव और मेल का रहना, वेद की शिक्षा के अनुकूल है।

वैदिकसाम्यवाद की विशेषता।

इस (वैदिक)साम्यवाद की विशेषता यह है कि इसमें समता का विधान उन्नति करने का अवसर प्राप्त करने में किया गया है फल प्राप्ति में नहीं। फल तो प्रत्येक व्यक्ति अपने पुरुषार्थ के अनुकूल ही प्राप्त किया करता है। उन्नति का अवसर सबको एक जैसा प्राप्त होना चाहिये। प्रत्येक वर्ण में उत्पन्न हुए

जवाहर लाल नेहरू, जो इस देश में आधुनिक वर्गवाद के सबसे बड़े नेता समझे जाते हैं, वे भी पुरुषार्थ करने के अवसर की प्राप्ति ही का समर्थन करते है ।

एक जगह उन्होने लिखा है कि "यह बात किसी ने नही कही जैसा कि पायोनियर के एक लेख से प्रतीत होता है कि सब मनुष्य शारीरिक वा मानसिक दृष्टि से बराबर हैं वा सभी जातियों में इसी प्रकार की समता की स्थिति है अपितु जो कुछ कहा गया और जिसे बुद्धिमानो का अधिकांश भाग स्वीकार करता है, वह यह है कि सभी मनुष्यों को उन्नति का अवसर प्राप्त करने में समता होनी चाहिये । वर्तमान पूंजीवाद में यह अवसर न प्राप्त है और न हो सकता है ।"

इस समता का रूप वैदिक साम्यवाद में क्या है

वैदिक साम्यवाद में, उपर्युक्त समता किस प्रकार प्राप्त हो सकती है ? उसके साधनों का रूप आश्रम और वर्ण व्यवस्था में

---

* पं० जवाहर लाल के शब्द ये हैं: - No one has said, as the Pioneer article seems to imagine that all men are physically or mentally equal, or that all nations are similarly situated. What has been said, and what is admitted by the great majority of intelligent men, is that all human beings should have an equality of opportunity. The present Capitalist System does not and can not in the nature of things provi le this equality of opportunity.

(The Hindustan Times 21-11- 33.)

बालक गुरुकुलों में चले जाया करते थे और वहां प्रत्येक को शिक्षा-प्राप्ति का एक-जैसा अवसर प्राप्त होता था। उस अवसर से लाभ उठाकर कोई भी शूद्र वर्ण में उत्पन्न हुआ बालक अपने को ब्राह्मण वर्ण के कर्त्तव्यों के पालन करने के योग्य बना सकता था और बना लेने पर आचार्य उसका ब्राह्मण वर्ण ही निश्चय कर दिया करता था। इसी प्रकार ब्राह्मणादि वर्णों में उत्पन्न हुए बालक अन्य वर्ण के योग्य अपने गुण कर्मानुसार बन जाया करते थे। इस प्रकार उन्नति का द्वार प्रत्येक के लिये खुला होता था। उन्नति या अवनति करना उसके अपने अधिकार में हुआ करता था।

जिस प्रकार एक परिवार में माता और पिता के सभी पुत्रों (प्रत्येक भाई) को एक प्रकार का अवसर उन्नति करके आगे बढ़ने का प्राप्त हुआ करता है इसी प्रकार संसार के प्रत्येक पुरुष और स्त्री को प्राप्त है। उनका कर्त्तव्य है कि पुरुषार्थमय जीवन व्यतीत करते हुए सभी उन्नति करें और आगे बढ़ें। यदि कोई उनमें से आलस्य और प्रमाद करता है तो आवश्यक है कि वह अन्यों से पीछे हो जायेगा जो पुरुषार्थमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

वैदिक साम्यवाद की समता

वैदिक साम्यवाद की समता, पुरुषार्थ का अवसर प्राप्त होने और धार्मिक जीवन व्यतीत करने में है, फलप्राप्ति में नहीं। फल तो प्रत्येक मनुष्य को, उसके कर्मानुसार ही मिला करता है। जैसा कि कहा जा चुका है कोई यदि चाहे कि कुछ न करके संसार के धन धान्य में, बराबर का साझी बन जाय, जैसा कि कई बेसमझ आदमी, समझ लिया करते हैं, तो उन्हें समझ लेना चाहिये कि वे मूर्खों के स्वर्ग का स्वप्न देख रहे हैं। पं०

जवाहर लाल नेहरू, जो इस देश में आधुनिक वर्गवाद के सबसे बड़े नेता समझे जाते हैं, वे भी पुरुषार्थ करने के अवसर की प्राप्ति ही का समर्थन करते है ।

एक जगह उन्होंने लिखा है कि "यह बात किसी ने नहीं कही जैसा कि पायोनियर के एक लेख से प्रतीत होता है कि सब मनुष्य शारीरिक वा मानसिक दृष्टि से बराबर हैं वा सभी जातियो में इसी प्रकार की समता की स्थिति है अपितु जो कुछ कहा गया और जिसे बुद्धिमानों का अधिकांश भाग स्वीकार करता है, वह यह है कि सभी मनुष्यों को उन्नति का अवसर प्राप्त करने में समता होनी चाहिये । वर्तमान पूंजीवाद में यह अवसर न प्राप्त है और न हो सकता है ।"

इस समता का रूप वैदिक साम्यवाद में क्या है

वैदिक साम्यवाद में, उपर्युक्त समता किस प्रकार प्राप्त हो सकती है ? उसके साधनों का रूप आश्रम और वर्ण व्यवस्था में

---

* पं० जवाहर लाल के शब्द ये है: - No one has said, as the Pioneer article seems to imagine that all men are physically or mentally equal, or that all nations are similarly situated. What has been said, and what is admitted by the great majority of intelligent men, is that all human beings should have an equality of opportunity. The present Capitalist System does not and can not in the nature of things provide this equality of opportunity.

(The Hindustan Times 21-11- 33.)

निहित है। मनुष्य को,जब से वह होश सम्भाल कर काम करने के योग्य हुआ करता है उस समय से लेकर अन्त समय पर्यन्त जो कुछ वह करता या कर सकता है उस सब का एक समष्टि नाम आश्रम और वर्ण है। वर्ण और आश्रम की वैदिक मर्यादा के समझ लेने से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

इस आश्रम और वर्ण व्यवस्था की एक विशेषता

आश्रम और वर्ण व्यवस्था का जो रूप ऊपर दिया गया है उससे स्पष्ट है उनमें सहयोग रहना अनिवार्य है। एक ब्रह्मचारी शिक्षा वानप्रस्थ और संन्यासी देता है और भोजन गृहस्थ, तो कैसे सम्भव है कि एक ब्रह्मचारो अन्य आश्रम वालो से ईर्ष्या या द्वेषरखे। इसी प्रकार जो उसे भोजन देताहै अथवा शिक्षा वे तो पालक और गुरु है वे किस प्रकार विद्यार्थी से अप्रसन्न रह सकते हैं।

इस आश्रम-व्यवस्था के अनुसार प्रारम्भ में विद्यार्थी के रूप में, एक व्यक्ति को गरीबी का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। आगे चलकर दूसरे आश्रममें धन पैदा करके वह बड़ा दौलतमन्द बन जाता है, फिर आगे चलकर, आगे के आश्रमों में उसे फिर गरीबी का जीवन ही व्यतीत करना पड़ता है। यह प्रथा है जो मनुष्य को न तो मौरूसी अमीर बनने देती है और न मौरूसी गरीब। फिर पश्चिमी देशों का सा काम और पूंजी का झगड़ा यहां किस प्रकार पैदा हो सकता है। इस व्यवस्था के रू से जो आश्रम धन पैदा करता है वह केवल अपने लिये नही बल्कि समस्त आश्रम वालों के लिये पैदा करता है। फिर भला उसे पूंजीपति कहकर उससे कौन झगड़ा कर सकता है?

चार प्रकार के ऋण

भारतीय संस्कृति में व्यक्ति और समाज में से प्रत्येक को उत्थान का पूरा पूरा अवसर प्राप्त होता है, उन अवसरों को ऋण के नाम से पुकारा गया है। उनका विवरण इस प्रकार है: —

(१) पितृऋण—इस ऋणका उद्देश्य जगत् की नियत प्रथा को जारी रखना है। जिस प्रकार माता पिता पुत्रों को उत्पन्न करके और यथासंभव अपने से योग्य बनाकर अपने स्थानापन्न के रूप में छोड़ जाते है, उसी प्रकार उन स्थानापन्नों का यह कर्तव्य है कि वे भी उपरोक्त प्रकार से अपने से अधिक योग्य बनाकर अपने स्थानापन्नों को छोड़ जावें.यदि छोड़ जाते हैं तो समझा जाता है कि उन्होंने अपने इस ऋण को चुका दिया। इसी को संसार में पत्नी की इच्छा और मनुष्य के चार जीवन्तोद्देश्यों में काम कहते हैं। मनुष्य को पत्नी की इच्छा नैसर्गिक है। किस प्रकार सन्तान अपने से योग्य बनाई जाती है इसके लिए भारतीय संस्कृति में एक पद्धति थी जिसका नाम संप्रति कर्म है उसका संक्षिप्त विधान इस प्रकार है:—

संप्रति कर्म

जब एक गृहस्थ आगे के आश्रमों में जाने लगता था तो पुत्र से तीन प्रश्न करता था:—(१) त्वं ब्रह्म, (२) त्वं यज्ञ:, (३) त्वं लोक: इसका अभिप्राय ग्रन्थों में इस प्रकार अंकित है कि ब्रह्म-शब्द में, जो कुछ उस गृहस्थ में पढ़ा अथवा जो नहीं पढ़ सका, उस सब की एकता है। पिता का पहले प्रश्न से आशय यह होता था कि उसने जो कुछ पढ़ा है उतना तो

पुत्र को अवश्य पढ़ना ही चाहिए, उसके सिवा जो वह नहीं पढ़ सका उसे भी पुत्र को पढ़ना चाहिए। पुत्र "अहं ब्रह्म" शब्दों से उत्तर देकर उस उत्तरदायित्व को स्वीकार कर लेता था। दूसरे प्रश्न "त्वं यज्ञ" का आशय यह होता था कि जितने अच्छे कर्म उसने किए है उतना तो पुत्र को अवश्य करना ही चाहिए। उसके अतिरिक्त जिन अच्छे कर्मों को वह नहीं करसका उन्हें भी उसे करना चाहिए। पुत्र "अहं यज्ञः" यह उत्तर देकर इस उत्तरदायित्व को भी स्वीकार कर लेता था। तीसरे प्रश्न 'त्वं लोकः' का आशय यह होता था कि जितना लोक में मेरा यश है उतना यशस्वी तो तुझे होना ही चाहिये, उसके सिवा जिस यश को मैं प्राप्त नहीं कर सका उसको भी तुझे प्राप्त करना चाहिए। पुत्र 'अह लोकः' इन शब्दों मे उत्तर देकर, इस उत्तरदायित्व को भी अपने जिम्मे ले लेता था। यह कम घर घर में होता था जिसका अवश्यंभावी परिणामयह था कि प्रत्येक घर में पिता से पुत्र, अध्ययन. शुभ कर्म और यश प्राप्त करने में आगे निकल जाता था, यह प्रथा थी जिससे वर्तमान नस्ल से आने वाली नस्ल श्रेष्ठ होती रहती थी।

दूसरा देव ऋण

"देव ऋण" यह दूसरा ऋण था। देव अग्नि, वायु पृथिवी आदि सभी को कहते है। नेचर ने इनमें से प्रत्येक "वस्तु" को मनुष्य को लाभ पहुंचाने के लिए, शुद्ध रूप में उत्पन्न किया है परन्तु मनुष्य उन्हें अपने जीवन के व्यवहारों द्वारा अशुद्ध

(१) बृहदारण्यकोपनिषद् पहला अध्याय पांचवां ब्राह्मण कंडिका १७ (क)

करता रहता है। मलमूत्र आदि के त्याग द्वारा अशुद्धि होती रहती हैं। इसलिए मनुष्यों का कर्तव्य है कि जितनी वे अशुद्धि फैलाते रहते हैं उतने ही शुद्धि के साधनों का भी विस्तार करते रहें। इसके विस्तार का रूप "अग्निहोत्र" है अर्थात् सुगन्धि और पुष्टिकारक पदार्थों को अग्नि द्वारा जलाकर वायु, जल और पृथिवी आदि की शुद्धि करते रहना चाहिए। ऐसा करने ही से इस दूसरे ऋण से मनुष्य उऋण हुआ करता है।

तीसरा ऋषि ऋण

ऋषियों द्वारा जो शिक्षायें मनुष्यों को मिला करती है मनुष्य उनके लिए उन ऋषियों और गुरुओं आदि का ऋणी हुआ करता है। उस ऋण के चुकाने का प्रकार यह है कि जो शिक्षा गुरुओं द्वारा मिला करे, शिक्षा पाने वाले का, उसके लिए कर्तव्य है कि उसे कुछ एक शिक्षेच्छुओं में फैलाता रहे जिससे जो ज्ञान दुनियां में आया है वह दुनिया से जाता न रहे क्योंकि वह दुनिया की अनमोल सम्पत्ति है।

शतपथ ब्राह्मण में इस ऋण की चर्चा की गई है। इस ऋण का भाव यह है कि प्रत्येक मनुष्य, भोजन, वस्त्र औषधि आदि अपने कल्याण और जीवन की स्थिति रखने के लिए अन्यों का मुहताज होता है। इसलिए वह उनका ऋणी है। उस ऋण को चुकाने के लिए, प्रत्येक प्रकार से, प्रत्येक मनुष्य को प्रत्येक दूसरे मनुष्य की सहायता करते रहना चाहिए। यह ऋण है जिससे समाज के कार्यों में सामंजस्य रहा करता है और समाज मे पारस्परिक प्रेम रखने और सहायता करने के लिए

मनुष्य बाधित हुआ करता है।[1] इन ऋणों और उनके चुकाने की प्रथा पर विचार करने से यह बात साफ तौर से जाहिर हो जाती है कि व्यक्ति और समाज दोनों को श्रेष्ठ बनाने के साधन इनमें मौजूद हैं। ये चारों ऋण, जीवनोद्देश्य के चारों प्रकरण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के साधन ठहरते हैं और आश्रम तथा वर्णों के उत्तरदायित्व की भी इन से पूर्ति होती है।

---

(१) ऋणं ह वै जायते योऽस्ति। स जायमान एव।
(१) देवेभ्यः (२) ऋषिभ्यः (३) पितृभ्यः (४, मनुष्येभ्यः॥
(शतपथ ब्राह्मण १।७।२।१)

तेरहवां अध्याय

"सामाजिक और आर्थिक अवस्था"

श्रेणी-संघर्ष नहीं होना चाहिए

मार्क्सवाद ने श्रेणी-संघर्ष को अपने वाद का एक अंग ठहराया हैं परन्तु यह नियम संसार की शान्ति में बाधक है। योरूप के लोग इतने निकृष्ट स्वार्थों और मनुष्यत्व के गुणों से हीन होते हैं कि वे किसी वाद को संसार की शांति अशांति अथवा मनुष्यत्व की दृष्टि से देखना जानते ही नहीं। इनका सदैव उद्देश्य केवल अपने स्वार्थों की सिद्धि हुआ करती है। हिन्दुस्तान को क्यों स्वतन्त्र नहीं होना चाहिए? इस लिए कि इससे इंग्लैंड वालों के हलवा मांडे में अन्तर आता है। यही हाल मार्क्स का भी है। उसने भी जब श्रेणी-संघर्ष का नियम बनाया तो यह नहीं सोचा कि जब वह संसार को श्रेणी रहित और समता वाला समाज बनाना चाहता है तो इस उद्देश्य की इस संघर्ष वाले नियम से किस प्रकार संगति लगाई जा सकती है? संसार की शान्ति के लिए दो बातों की जरूरत है कि हम मिलकर और बांट कर काम करें। इसका एक बड़ा सुन्दर उदाहरण शरीर की उपमा में दिया गया है :—

मिलकर और बांट कर काम करना

मनुष्य समाज को एक शरीर कल्पना करके निम्न[illegible]
तर उसके सम्बन्ध में [illegible] है :—

प्रश्न—उसे रचे हुए मनुष्य समूह को किस प्रकार विभक्त किया ? उसका मुख क्या था, उसके बाहु, उरु (जघाएँ) और पांव किन्हें कहा गया ? [१]

उत्तर—उस (मनुष्य समूह) का मुख ब्राह्मण था, बाहु क्षत्रिय को किया, जो वैश्य हो उसे जंघा स्थानी बनाया और पांव से शूद्र प्रकट हुआ। [२]

संसार का समस्त क्रियात्मक व्यवहार गृहाश्रम से सम्बन्ध रखता है। इसी आश्रम वाले धन पैदा करते हैं, कृषि व्यापार इसी के आधीन है। बड़े बड़े कारखाने भी यही खोलता है। युद्ध भी यही करता है। इत्यादि इसलिए इसी आश्रमसे सम्बन्धित मनुष्य समाज का सिर ब्राह्मण को ठहराया क्योंकि अध्ययन से और अध्ययन का सम्बन्ध मुख्य रीति से मस्तिष्क ही के अधीन होता है और रक्षा का काम बाहू से किया जाता है इसलिये उसे क्षत्रिय बतलाया गया। जघाएँ(पेट समेत)शरीर का भोजन भंडार है। यहीं से समस्त शरीरको भोजन और भोजन से बना हुआ रक्त आदि मिला करता है इस लिए उसे वैश्य ठहराया। समस्त संसार का भार अपने शारीरिक परिश्रम से शूद्र वहन करता है इसलिए उसे पांव स्थानी बताया। समस्त गृहस्थाश्रम और उसके चार विभाग ब्राह्मण,क्षत्रिय आदि को शरीर से उपमा देते हुए शिक्षा दी गई है कि जिस प्रकार शरीर के प्रत्येक अव-

---

(१) यपुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्। मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादाबुच्येते॥ (यजुर्वेद ३१।१०)
(२) ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥ (यजुर्वेद ३१।११)

यत्र का काम पृथक् २ है, परन्तु उनमें कितना सहयोग है यह कथनातीत है। यदि पांव में एक फांस लग जाती है तो बाकी समस्त शरीर का ध्यान उसी ओर चला जाता है और जब तक उस फांस को निकाल कर पांवों को आराम नहीं पहुंचा दिया जाता तब तक सारा शरीर बेचैन जैसा रहा करता है। वही हाल शरीर के अन्य अवयवों का है। इससे बेहतर उपमा मिल कर और बांटकर काम करने की और कोई दूसरी नहीं दी जा सकती थी। आश्रम और वर्ण व्यवस्था का उद्देश्य भी यही है कि समस्त समाज मिलकर और बांटकर अपना अपना काम करे।

इस उद्देश्य की पूर्ति में रुकावट क्यों !

यह उद्देश्य सहस्त्रों वर्ष तक पूरा होता रहा है। जब तक संसार में आर्यों का राज्य रहा और आर्य-सभ्यता देश में प्रचलित रही। राम ने रावण को विजित किया परन्तु उन्होने लका को अवध की कालोनी नही बनाई किन्तु उसी के भाई विभीषण को राजा बना दिया। कृष्ण ने जरासंघ को पराजित किया तो उसके राज्य मगध देश को पांडवो के राज्य इन्द्रप्रस्थ में शामिल नही किया किन्तु भविष्य के लिए कुछ मामूली शरतें ठहरा कर उसके पुत्र संजय को उसके राज्यका राजा बना दिया। आर्य सभ्यता किसी अन्य देश को परतन्त्र और किसी अन्य जाति को दासता की बेड़ी में जकड़ना पाप समझती है। हमारी सभ्यता का आदर्श 'स्वतन्त्र रहो और अन्यों को परतन्त्र न रहने दो" रहा है परन्तु पश्चिम की स्वार्थपरायण जातियों ही ने किसी अन्य देश को अपनी कालोनी बनाकर उस जाति को परतन्त्र बनाने की प्रथा को संसार में प्रचलित किया। यह

झूठ है कि आर्यों ने बाहर से आकर इस देश के असली रहने वालों को अपना दास बनाया और स्वयं देश के मालिक बन गये । यह उन्हीं पश्चिमी लेखकों के मस्तिष्क की उपज है जिन्होंने अपने कोलोनी बनाने रूप दुष्कृत्य को छिपाने के लिये एक आड़ खोज की है । ऐसे इतिहास इतिहास नहीं इतिहासाभास है । इन्हें शीघ्र से शीघ्र रद्दी की टोकरों में डाल देना या अग्नि की भेंट कर देना चाहिए ।

योरूप का नैशनलइज्म

पश्चिमी देश अपने नैशनलइज्म की आड़ में यह एक दुष्कृत्य करते हैं । यह नेशनलइज्म पश्चिमी देशों में एक जन्म की जाति बनाने का साधन है । और इसी वाद (इज्म) के आश्रय से अनेक जन्म की जातियां वहां बन गईं । अंगरेज फ्रेंच, जरमन, रूसी आदि सभी जन्म की जातियां हैं । इन में और इस देश में प्रचलित जन्म की जातियों में केवल इतना अन्तर है कि इस देश की जन्म की जाति किसी परिवार विशेष में जन्म लेने से बनती है और योरुप की जन्म की जातियां स्थान विशेष में जन्म लेने से बना करती हैं । परन्तु इन स्थान विशेष में जन्म लेने से बनी हुई जन्म की जातियां इस देश में प्रचलित जन्म की जातियों से कहीं अधिक भयानक हैं । यह योरुप की जन्म की जातियां एक दूसरे की प्राण लेवा है । आज (१९४५ई०)का युद्ध इसका जीता जागता उदाहरण है । अस्तु यह बात नहीं है कि हम नेशनल इज्म को नहीं मानते हैं, हम भी नैशनलइज्म को मानते हैं परन्तु हमारा नैशनलइज्म, उद्देश्य नहीं अपितु विश्वभावना तक पहुंचने का साधन है । परन्तु योरुप की जातियों का नैशनलइज्म उनका उद्देश्य है ।

इससे आगे उन्हें कुछ दिखाई ही नही देता। योरुप में जो समय समय पर युद्ध होते रहते हैं और जिनकी लड़ी टूटने नहीं पाती, उनका कारण उनका यह नैशनलइज्म ही है। यदि उन्होने अपना दृष्टिकोण न बदला तो उनका यह नैशनलइज्म उन को समाप्त किये बिना न छोड़ेगा। अस्तु, हमने देख लिया कि चाहे वर्ग का श्रेणी-संघर्ष हो, चाहे योरुपीय जातियों का नैशनलइज्म, ये दोनों मिलकर और बांट कर काम करने के सुनहरे सिद्धांत के विरुद्ध हैं इस लिये संसार में शान्ति इन दोनों वादों में सुधार किए बिना नही हो सकती।

वर्गवाद के अच्छे पहलू

इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि पूंजीपतियों के अत्याचार ने जो वे चिरकाल से गरीबो पर करते रहते थे वर्गवाद को कार्य और प्रतिकार्य के नियमानुसार पैदा किया और इसमें भी सचाई है कि इससे रूस को लाभ भी पहुंचा और उसके जो निकृष्ट और क्रियात्मक पहलू थे उनसे देश को हानि भी काफी पहुंची। हम उसके दोनों पहलुओं को प्रकट कर देना उपयोगी समझते है।

उसके अच्छे पहलू इस प्रकार है : -

(१) कृषि और कारखानों की पैदावार की वृद्धि करके उन का उपयोग उपभोग में करना। उद्देश्य उपभोग था धन लाभ नहीं। (२) शिक्षा का प्रत्येक के लिये अनिवार्य, (३) बच्चों के पालन पोषण तथा माता के लिये गर्भ और उत्पत्तिकाल में सब प्रकार के सुभीते देना(४)देश की रक्षा का प्रबन्ध, (५) बड़े शहरों में मनोरंजन के लिये उद्यानों तथा औषधि आदि का प्रबन्ध,

' ६)सस्ता न्याय प्रबन्ध, (७) स्त्रियों की योग्यताओं का अधिक से अधिक उपयोग, (८) समाचार पत्रों की वृद्धि । ४६७ समाचार पत्रो की जगह (१६३४ई० में) ५४०० पत्र निकलते हैं। जिन की ग्राहक सख्या २० लाख से लेकर ३ करोड़ ८० लाख तक है । २७६० जिले की संगठित सभायें और १५०० कारखाने है।' (६) निरक्षरता६० फी सदी की जगह १६३०ई० में केवल १० फीसदी रह गई।² अंग्रेजों के स्वार्थपूर्ण शासन में २०० वर्ष में केवल ६ फीसदी लोग पढ़ सके बाकी ६१ फीसदी मूर्ख है । कुछ पहले रूस के बोलशेविक विद्वान् मार्क्स वाद को पुराना ग्रहदनामा और लेनिनवाद को नया ग्रहदनामा कहा करते थे । परन्तु ग्रब दोनों ही पुराने ग्रहदनामे हो गये । ग्रब तो स्टेलिनवाद ही वोलशेविक रूस का नया ग्रहदनामा है। सोवियत रूस की उपयुक्त अच्छी बातें जो वर्णन की गई हैं यह कोई वर्गवाद की विशेषता नही ये तो सुधार की बातें हैं जो कोई भी सुधारक समाज कर सकता है । जापान ने ६०—७० वर्ष के बीच सभी बातों में उतनी उन्नति कर ली थी जिसे देखकर दुनिया चकाचोंध में आ गई थी ।

वर्गवाद के अक्रियात्मक पहलू

(१)मजहब के दूर करने का यत्न करना.(२) प्राईवेट प्रापर्टी का न रहने देना, (३) व्यक्तिगत व्यापार को नष्ट करना तथा पारिवारिक जीवन का मूल्य न समझना, ये तीन अशिष्ट प्रथायें हैं जिन्हें वर्गवाद फैलाना चाहता है । पुरातन

1. Modern Review Calcutta june 1934 P. 150
2. The Great Offensive by M. Hindus Ch, XI

काल से चले आए, चिरपरिचित शब्दों—धर्म स्वतन्त्रता,संपत्ति घर और परिवार अब इन की कोई कीमत नहीं । वर्गवाद का एक मात्र उद्देश्य अपने बनाये उद्देश्य और इच्छाओं को पूरा करना है ।[१]

विश्वभावनावाद

ऊपर कहा गया है कि हमारा नैशनलइज्म, विश्वभावनावाद का साधक है । विश्वभावनावाद जिसे आर्य जाति ने एक समय समस्त पृथिवी पर फैलाया था, उसका सम्बन्ध मनुष्य की मनोवृत्ति है । अधिक से अधिक मनोवृत्ति तब उदार हो जाती है जब वह विश्वभावना का रूप ग्रहण कर लिया करती हैं । हमारी दृष्टि में मनुष्यत्व और विश्वभावनावाद एकार्थक शब्द है । परन्तु पश्चिमी देशों में इस मनुष्यत्व के समझने में भी मतभेद हैं ।

मनुष्यत्व क्या है

लेनिन जिसे पथिक "उलियानोव (Ulianov)" भी कहते थे वह मनुष्यत्व के अर्थ आत्मबलिदान (Sacrifice) समझता था ।[२] आत्म बलिदान को ही यज्ञ कहा जाता है । श्री कृष्ण ने एक जगह कहा है कि "प्रजापति ने यज्ञ के साथ प्रजा को उत्पन्न किया ।[३] अन्य अनेक पश्चिमी लेखकों ने मनुष्यत्व को

(1) The Great Offensive by M. Hindus P. 11 (Published in 1933)

(2) Lenin by Valarise Mareu P.81 82, 92, 97

(३) सहस्रशः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टा कामधुक् ॥

भी नैशनलइज्म से मिलता जुलता शब्द समझा है परन्तु यह उनकी भूल है। यह (मनुष्यत्व) शब्द इतना साफ अर्थ वाला है कि इसमें अनेक अर्थों की गुन्जाइश ही नहीं। अस्तु धन यज्ञ के लिए होना चाहिए जिस से अनेक उपयोगी काम होते रहें। परन्तु धनवान् यह नहीं चाहते।

वर्तमान आर्थिक समस्या वंचना पूर्ण है।

आज पूंजीपतियों का विश्वास यह है कि धन का न केवल साधारण व्याज मिलना चाहिए अपितु उस व्याज का रेट अधिक से अधिक हो और उसके साथ ही मिश्रित व्याज भी और वह भी चिरकाल तक बिना किसी गैर के मिलता रहना चाहिए। इसी प्रकार पूंजी के किसी व्यवसाय में लगाने से मुनाफा भी अधिक से अधिक होना चाहिए जिससे उस मुनाफे पर मुनाफे से नई पूंजी तय्यार होती रहे और यह क्रम समाप्त नहीं होना चाहिए। यह वंचनापूर्ण नीति पूंजीपतियों की है जो आम तौर से पश्चिमी देशों में प्रचलित है। इसी ठगी की नीति ने कार्य और प्रतिकार्य के नियमानुसार वर्गवाद को जन्म दिया है, जैसा कि कहा जा चुका है। परन्तु इस देश में मनु की स्मृति के अनुसार मूलधन से सूद के न बढ़ने देने की प्रथा प्रचलित थी।[1] इस प्रथा को 'दामदट' कहते थे। इंगलैंड में *बिशप जार्ज मर्टन के यत्न से सूद का दर १०)* सैकड़ा वार्षिक नियत हुआ था। यह दर घटाकर पहले ८) किया गया। उसके बाद १६५० ई० में ६) प्रति सैकड़ा सालाना नियत हुआ। परन्तु १८५५ ई० में सूद के *नियन्त्रण करने*

(१) मनुस्मृति।

के सभी कानून रद कर दिए गए। यह समय था जब योरुप में वंचनापूर्ण आर्थिक नीति प्रचलित हो चुकी थी। १८१५ ई० मे यह कानून इस देश में भी प्रचलित कर दिया गया। योरुप के लोग तो मन चाहा सूद १८४१ के बाद लेने ही लगे थे। १८५५ ई० के बाद इस देश वाले भी उस वंचनापूर्ण नीति का अनुकरण करने लगे। जिसका फल यह हुआ कि 'दामट' प्रथा उड़ गई और लोग अंधाधुन्ध सूद लेना पाप नहींसमझते थे।[1] मनु ने ब्याज खाने वाले का अन्न अन्यों के लिए निषिद्ध ठहराया है।[2] यह उदाहरण बतलाता है कि किस प्रकार विदेशी शासकों ने यहां के प्रचलित नियमों को नष्ट कर के एक प्रकार की ठगी का प्रचार किया।[3]

(२) एक ओर अत्यन्त कुनीति का साधन सिक्कों के रूपमें धन बन रहा है, सिक्के असल में इसलिये चलाए गये थे कि इनसे वस्तुओं का विनिमय (Barter or Exchange) में सुभीता हो परन्तु अब वह स्वयं व्यापार की एक वस्तु बन गया है। बैंकिंग (Banking इसी व्यापार का नाम है। यह व्यापार और भी इस से दूषित हो गया है कि पेपर करेंसी के रूप में एक चिन्ह (Token) की रचना कर ली गई है। अब इस कागजी धन के पीछे किसी देश मे भी उतना सोना, चांदी

---

(१) विश्ववाणी प्रयाग मार्च १९४१ ई० पृष्ट २८०

(२) मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक २१०

(३) सभी धर्मों और मजहबों में अधिक ब्याज निषिद्ध ठहराया गया है। परन्तु लामजहबी की पश्चिमी सभ्यता ने सूद का नियन्त्रण अपने स्वार्थ के विरुद्ध समझा था। (लेखक)

आदि सुरक्षित नही रक्खे जाते जितना उस कागजी धन का कागज मे अंकित मूल्य है। अनेक जगह ७५ प्रतिशत या अधिक धन भी सोने चांदी के रूप में अब नही रखाजाता। यह स्पष्ट है कि इस अवस्था का नाम धोखा देने के सिवा और कोई नहीं। और यह धोखा देने वाली वह एजेन्सीहै जो इन नोटों को जारी करती है, वह चाहे राज्य हो या कोई बैंक। यह व्यापार झूठी जमानत (False credit पर चल रहा है। झूंठा इसलिए कि इसकी पीठ पर सोना चांदी के रूप में कोई जमानत नहीं। परन्तु ये और इस प्रकार के व्यवसाय इस देश में न प्रचलित थे और न मनु के नियमों के होते हुए प्रचलित हो सकते थे। डाक्टर भगवान दास ने एक जगह लिखा है कि अंगरेजी शब्द धन के लिए Weal th (weal=willness, welfare, है। इसके लिए संस्कृत शब्द धनम्' है जिसका शब्दार्थ (दधाति फलानि) 'वह धन जो फल पैदा करे' है[1] पेपर मनी की पीठ पर यदि सोना चांदी की जमानत हो तब तो उस समय भी 'उसका कुछ मूल्य हो सकता है। उस कागजी धन को जारी करने वाला बैंक यदि फेल हो जावे और उसकी पीठ पर यदि जमानत भी नही तो फिर उस पेपर की कोई कीमत नहीं रहती और इस लिए उसे फिर धन भी नहीं कह सकेंगे, क्योंकि वह कुछ फल नहीं दे सकेगा। धन के इस अवान्तर रूप को देने के बाद हम फिर उसी असली विषय विश्वभावनावाद पर आ जाते हैं।

---

(1) Ancient V. Modern Scientific Socialism by Dr. Bhagwan Das P. 35

पूंजी का पुनः बटवारा करना

क्या पूंजी के बटवारे और पुनः पुन: बटवारे से मनुष्यों में स्थायी समता आ सकती है ? नही" ही कहा जा सकता है। कल्पना करो कि किसी महान् शक्ति ने पृथिवी के समस्त धन को इकट्ठा करके, सारी आबादी में बराबर बराबर बांट दिया तो प्रश्न यह है कि क्या फिर सब बराबर धन वाले लोग बने रहेंगे ? कदापि नहीं, क्योंकि धन का बटवारा तो शक्तिमत्ता से किया जा सकता है परन्तु मनुष्य स्वभाव की विभिन्नता को कौन बदल सकता है ? एक व्यक्ति धन संग्रह का पक्षपाती है, दूसरा अधिक खर्च करने वाला। तीसरा धन को दोनों की, रक्षा रूप दान के हक में है,चौथा जुये आदि दुर्व्यसनों के पक्ष में होकर धन का अपव्यय करना चाहता है तो बतलाओ तो सही कि इस स्वभाव की विभिन्नताओं को रखते हुए किस प्रकार वे बराबर धन वाले रह सकते ?

एक उदाहरण

मुरादाबाद नगर की एक घटना है, एक दौलतमन्द साहूकार की मृत्यु हो गयी। उसके पास ७ लाख की सम्पत्ति और दो पुत्र थे। पिता के मरने पर दो भाइयों को आधा आधा धन मिल गया। बड़ा भाई समझदार था। उसने अपने हिस्से के धन को व्यवसायों में लगाकर और भी बढ़ा लिया परन्तु छोटा भाई बे समझ और दुर्व्यसनी था। उसने जुये, रंडीबाजी और शराब खोरी इत्यादि में, कुसंगति में पड़कर, तीन वर्ष ही में अपना सारा धन बरबाद कर दिया। अब विचार करो कि एक

वार तो इन दोनों की संपत्ति बराबर कर दी गई थी परन्तु वह बराबर रह न सकी। इसलिए कि दोनों भाईयों के स्वभावों में अन्तर था। अस्तु:, यह विचार कि बटवारे और पुनः बटवारे से सभी मनुष्य बराबर सपत्ति वाले हो जायेंगे बुद्धिमत्ता का विचार नहीं हैं और जितने शीघ्र छोड़ दिया जावे। उतना ही अच्छा होगा।

आश्रम और वर्णव्यवस्था तथा धन-विषमता

वर्गवाद के विपरीत आश्रम और वर्ण व्यवस्था के प्रचलित हो जाने से, धन की विषमता रहने से भी, कोई धन न होने या कम होने से कष्ट नहीं उठा सकता। क्योंकि इस व्यवस्था में विद्वानों की शोभा तो धनहीन रहने से होती है। जैसा कि कहा जा चुका है कि तीन आश्रम ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यस्थ आश्रम में रहने वालों को कोई पेशा करके धन पैदा करना निषिद्ध ठहराया गया है। फिर इनका गुजारा किस प्रकार हो? भारतीय सभ्यता का एक अ ग और गृहस्थ आश्रम वालों का धर्म है कि जहां इन आश्रमों वाले व्यक्ति हों पहले उन्हें भोजन कराना चाहिए। उनकी सेवा और शुश्रूषा करनी गृहस्थों के दैनिक कर्तव्यों—पच यज्ञों में शामिल की गई है, इस लिये उन्हें कभी कष्ट नहीं होता था और न अब हो सकता है, क्योंकि भारतीय संस्कृति का महत्व तो त्याग में है न कि भोग में।

चौदहवां अध्याय

नवीन और प्राचीन समाजवाद की तुलना

तीन वाद, उनका विवरण और उनकी तुलना

समाजवाद के सम्बन्ध में मुख्य रीति से तीन स्कूल हैं जो इस समय, चाहे वे वाद रूप ही में क्यों न हों, प्रचलित हैं :—

पहला स्कूल मनु का है जिसका रूप आश्रम और वर्ण हैं। दूसरा स्कूल मार्क्स लेनिन आदि का है जो वर्गवाद के रूप में प्रचलित है और तीसरा स्कूल हिटलर और मुसोलिनी आदि का चलाया हुआ नाज या फेज-इज्म के नाम से प्रसिद्ध है। हम यहां इन तीनों का संक्षिप्त और अत्यन्त संक्षिप्त विवरण जो केवल मूल रूप में होगा देते हैं जिससे तीनों की तुलना करने में सुभीता हो।

पहला स्कूल मनु का

इस स्कूल को चाहे मनु क स्कूल कहो चाहे वेदवाद अथवा भारतीय संस्कृति, ये तीनों एकार्थक वाक्य हैं। इस वाद में, मनुष्य के स्वभावानुकूल तीनों इच्छाओं की पूर्ति का प्रत्येक व्यक्ति को अवसर प्राप्त रहता है। अर्थात् वह एक विशेष सीमा तक अपना व्यक्तित्व भी स्थिर रख सकता है जिसके द्वारा मानसिक और शारीरिक भोजन की प्राप्ति उसे होती रहती है, (२) निज सम्पत्ति की इच्छा की भी पूर्ति होती

रहती है और (३) तीसरे पारिवारिक जीवन भी बना रहता है। पुरुष को स्त्री की इच्छा और स्त्री को पुरुष की इच्छा नैसर्गिक है। पारिवारिक जीवन से इसकी पूर्त्ति होती रहती है।

दूसरा मार्क्सवाद

इस वाद में व्यक्तित्व की स्थिति का अभाव है इसलिये कि मजहब को दूर ही से लालझंडी दिखाई जाती है। (२) निजी सम्पत्ति नहीं रक्खी जा सकती है और निजी सम्पत्ति के अभाव से पारिवारिक जीवन भी नहीं रह सकता। इस वाद में समाज की मुख्यता है। व्यक्ति को भी पूर्णतया समाज के अधीन इस प्रकार रहना चाहिये जिससे उसकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का लेश भी बाकी न रहे। समाज ही सम्पत्ति का स्वामी हो, समाज ही उत्पत्ति के साधनों का मालिक हो।

तीसरा फैंजइज़्म

इस वाद के संचालकों के कथनानुसार इस वाद में मनुष्य की तीनों नैसर्गिक इच्छाओं (१) मजहब, (२) परिवार और सम्पत्ति रखने की बात स्वीकार की गई है। इस वाद की मुख्यता यह है कि इसमें पूंजी का नियन्त्रण रहता है। मुसोलिनी ने इस वाद के सम्बन्ध में विवरण देते हुए कहा था:—कि "रशिया और इटली दोनों जगह का शासन स्वतन्त्र विचारों का विरोधी है। सब कुछ स्टेट के अन्दर है, उससे बाहर या उसके विरुद्ध कुछ नहीं।"[१] इसीलिए इस वाद के प्रचारक,

---

(१) अंग्रेजी के शब्दों में:—"Every thing within the state, nothing outside the State, nothing against the state."

इस वाद को अनुदार कहने में जरा भी संकोच नही करते।[1] मेजर ग्राहम पोल ने इसे पूंजीपतियों का एक गृह बतलाया था जो राज्य का संचालन करते हैं। भयानक नैशनल-इज्म इसे कहा जाता है।[2]

तीनों का जितना मौलिक विवरण दिया गया है उससे स्पष्ट है कि एक दृष्टि ही में तीनों प्रकार के वादों का चित्र सामने खिच जाता है और प्रत्येक व्यक्ति को अवसर मिल जाता है कि तीनों के गुण और दोष को देखते हुए जिसे चाहे अस्वीकार करें।

पहले वाद में स्थानिक देशभक्ति (Local Patriotism) की बहुत थोड़ी गुञ्जायश है। समाज की समता भी एक सीमा तक रहती है परन्तु आज कल के शब्दों में इस समता का अभिप्राय पश्चिमी ढग का नैशनल-इज्म, वर्गवाद, सांप्रदायिकता आदि नही। दूसरे और तीसरे वादो में स्थानिक देशभक्ति का साम्राज्य रहता है। जगत् को समष्टि रूप से देखने की भावना का सर्वथा अभाव रहता है उसका कारण श्रेणी संघर्ष है, जिसका वर्गवाद में होना अनिवार्य है। तीसरे वाद को उसके संचालक स्वयं अनुदार बतलाते हैं फिर उसके लिए अधिक कहने की जरूरत ही नही।

(२) वर्गवाद के वाद और क्रिया में बड़ा अन्तर इसलिए पड़ जाता है कि इस वाद में व्यक्तिगत जीवन के नियमबद्धता के साथ व्यतीत करने का कोई विधान नहीं, जैसा कि आश्रम और

(1) George seldes, world Panaroma 1918-33 P. 142.

(2) Modern Review for Octo. 1933.

वर्णव्यवस्था में है। इस त्रुटि से मनुष्य समाज का अच्छा अंग नहीं बन सकता।

(३) कुछ एक वर्गवादी कहा करते हैं कि मनुष्य को जन्तुओं की स्वाभाविक और सामाजिक प्रवृत्ति को देख और समझ कर उसका अनुकरण करना चाहिए। कदाचित् ये वे व्यक्ति हैं जिन की बुद्धि में मनुष्य और जन्तुओं के अन्तर समझने की योग्यता नहीं। ऐसे लोग ही सामाजिक और पारिवारिक-कृत्यों विवाह आदि को स्त्री और पुरुषों दोनों के लिए बन्धन का हेतु समझा करते हैं। इस सम्बन्ध में कुछ एक मनोरंजक बातें ध्यान देने योग्य हैं। कुछ एक वर्गवादी स्त्री-पुरुषों ने एक समय फ्रांस में विवाह करना छोड दिया। उन्होंने विवाह करना तो छोड़ दिया परन्तु विवाह की नैसर्गिक इच्छा से वे ऊपर नहीं हो सके। इस लिए अनुचित रीति से उत्पन्न सन्तानों को रखने और पालन-पोषण करने से स्त्री-पुरुष दोनों ने इनकार कर दिया। तब ऐसे बच्चों के नष्ट कर देने के उद्देश्य से फ्रांस में एक समय १९१४ से पहले भट्टियां बनाई गईं। इन भट्टियों के स्वामी नियत फीस लेकर बच्चों को जला दिया करते थे। एक ऐसी ही भट्टी वाली स्त्री पकडी गई। भट्टी का हिसाब देखने से पता चला कि गिरफ्तारी के समय वह ऐसे तीन बच्चों को जला चुकी थी। इस प्रकार विवाह न करने और बच्चों के नष्ट होने से फ्रांस की आबादी कम होने लगी। तब फ्रांस की सरकार को उन लोगों पर जो सन्तान पैदा कर सकते थे, सन्तान न रखने का टैक्स लगाना पड़ा था।

(४) आश्रम और वर्णव्यवस्था की एक खूबी यह है कि न तो समाज व्यक्ति को भूल सकता है और न व्यक्ति समाज

से लापरवाह हो सकता है । अपितु दोनों अन्योन्याश्रित (Interdependent) होते है और इसलिए दोनों का सुधार होता रहता है।

(५) श्रेणीसहित समाज को रखना कुछ मनुष्य स्वभाव का अंग सा बन गया है। हमने देखा है जिन देशों में केवल एक ही मध्य श्रेणी थी तो उनमें भी उनके दो भेद उच्च और अनुच्च के नाम से हो गए।

पन्द्रहवां अध्याय

वैदिक राज्यप्रथा

राज्य की आवश्यकता

मार्क्स के वाद में अन्तिम वस्तु वर्गवादी समाज है। उसके बन जाने पर राज्य स्वयमेव नष्ट हो जाएगा। परन्तु भारतीय राज्यपद्धति में राज्य को अनिवार्य संस्था ठहराया गया है। १९३३ ई० में फैसिस्ट इटली में २२ संघ (Corporations) थे और सोवियत रूस में ४६ व्यापार संघ थे। हमारी राज्य व्यवस्था के बनाने वाले केवल चार (४) ही श्रेणी या वर्ण (Guild) थे। जैसा कहा जा चुका है उनमें से एक शिक्षा सम्बन्धी, दूसरा प्रबन्धसम्बन्धी, तीसरा धनोत्पत्तिसम्बन्धी और उनके प्रबन्ध से सम्बन्धित और चौथा शारीरिक परिश्रम से सम्बन्धित था। इन चारों श्रेणियों के कर्तृत्व को मर्यादा के भीतर रखने तथा उनके समस्त पुरुषार्थों को संगठित करने के लिए एक मुख्य व्यवस्थाविधायिनी सभा (Central Legislative Society) होती थी जो चारों संघों के प्रतिनिधियों से बना करती थी। उसका एक मुख्य प्रधान (राजा) निर्वाचित होता था, और व्यवस्था विधायिनी सभा के अन्तर्गत रह कर काम करता था। इस राज-पद्धति से बने हुए राज्य को

मानव राज्य कहा जाता था।[१] जिस प्रकार किसी भी छोटे समूह या समुदाय को नियन्त्रण में रखने के लिए एक मुखिया की जरूरत होती है उसी प्रकार देश को सुशासन में रखने के लिए एक राजा की जरूरत होती है। उसे चाहे राजा कहें या सभापति। राजा से घृणा क्यों होने लगी जब राजा प्रजा के अनुकूल काम न कर के स्वेच्छाचारी बन गए[२] और प्रजा पर अत्याचार करने लगे। चाहिये तो यह था कि राजा की इस निरंकुशता को दूर करके राजसंस्था को फिर अच्छा बना लेते परन्तु वर्गवाद ने अपने को दूसरे किनारे पर पहुंचा कर राजा के होने की आवश्यकता ही से इनकार करना शुरू कर दिया। राज प्रबन्ध की स्थिति के सम्बन्ध में इस देश का जो प्रबन्ध था वह मुक्त-कंठ से प्रशंसा के योग्य था। अनेक देशी और विदेशी विद्वानों ने उसकी जी खोलकर प्रशंसा भी की है। हम यहां उसका स्थूल ढांचा देते है:—

प्राचीन भारतीय राज्य व्यवस्था

सर चार्लिस मेटकाफ के लेखानुसार यहां की ग्राम पंचायतें छोटे मोटे प्रजातन्त्रीय राज्य थे। उनमें प्रत्येक ऐसी बातें शामिल थीं जिनकी ग्रामो को जरूरत हुआ करती है। उनका विदेशों से कोई सम्बन्ध नहीं होता था। वे तब ही समाप्त हो सकती थीं

---

(१) इसको अंग्रेजी शब्दों में Aristo-homo-cracy The rule of the best men ie "Legislation by the wisest = Execution by the ablest" or Humanism कहा जायगा (Ancient) V. Modern Scientific Socialism by Dr. Bhagwan Dass.

(२) वह एक राजा ही तो था जिसने क्राम्वेल की कब्र से निकलवा कर फांसी पर लटकवाया था।

जब उनसे पहले सभी कुछ समाप्त हो जाता था। एक वंश के बाद दूसरे वंश उनमें शामिल होते रहते थे। क्रांति पर क्रांति सफलता के साथ होती रहती थी परन्तु उनका ग्राम की पंचायतों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ने पाता था। इन ग्रामों की पंचायतों ने अन्य बातों की अपेक्षा आर्यजाति की रक्षा करने में सब से अधिक काम किया था। इन पंचायतों के द्वारा ग्रामीण प्रजा के मनोरंजनों और बड़ी सीमा तक उनकी स्वतन्त्रता में बाधा नहीं पड़ने पाती थी।'

(२) सरजार्ज बर्डवुड (Sir George Bird Wood) ने अपने एक ग्रन्थ में लिखा है "हिन्दुस्तान में सब से अधिक धार्मिक और राजनैतिक क्रांतियां हुई हैं। दुनियां में अन्यत्र कहीं ऐसा नहीं हुआ है परन्तु ग्राम पंचायतें, समस्त देश में अपना काम बिना किसी रुकावट के करती रहीं। सिथियन, ग्रीक, अफगान, मंगोल आदि अपने-अपने पहाड़ी देशों से आकर आक्रमण करते रहे। इसी प्रकार पोर्चगीज, डच, इंगलिश, फ्रेंच और डेन अपने-अपने समुद्रों से आये और सफलता के साथ अपना-अपना अधिकार देश के कुछ-कुछ भागों पर करते रहे परन्तु ग्रामों के धार्मिक और व्यापारिक संघों (*Religious, trade unions of villages*) पर उनके आने या जाने

---

(1) Ralp—select Communications of House of Commons 1832. vol III appendix 54—P. 33 quoted in the book Local Govt. in Ancient India by Radha Kumud Mukerji P. 3.

का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे एक चट्टान की तरह, ज्वारभाटे के चढ़ाव और उतार से अप्रभावित रहे।[1]

(३ हिन्दू राज्य की आदर्श नीति यह थी कि ग्राम पचायतें तथा अन्य राज्य की संस्था, सर्व साधारण के कार्यों में, इतना कम, जिससे कम होना सम्भव न हो, हस्तक्षेप करतीं थी। इन सस्थाओ के काम जानोमाल की रक्षा और मालगुजारी के वसूल करने तक, जिससे रक्षा का काम उचित रीति से हो सके, सीमित थे।[2]

(४) राजनैतिक और सामाजिक सस्थाओं की सीमाएं पृथक् पृथक् थी परन्तु दोनों जनता के लाभ में, एक-दूसरे को सहयोग देती थी। पश्चिमी देशों की अपेक्षा यह यहा की विशेषता थी। पश्चिमी देश सब (जगह और ग्राम) पर नियन्त्रण रखने के लिये, राज्य के प्रत्येक कार्य में हस्ताक्षेप किया करते हैं चाहे वे काम राजनैतिक जीवन से सम्बन्धित हों या सामाजिक जीवन से। पश्चिमी देशों में पहले राज्य समाज का एजेन्ट होता था पीछे से (समाज का) मालिक बन गया और समाज अपनी स्वतन्त्रता खोकर उसी मे शामिल हो गया परन्तु प्राचीन काल में इस देश के राजे राज्य के सरदार हुआ करते थे, समाज के नहीं।[3]

---

(1) Industrial Arts of India by Sir George Bird Wood P. 320.

(2) Local Government in Ancient India by Radha Kumud Mukerji P. 3.

(3) Lacal Govt in Ancient India P. 4.

(५ इंगलैंड में स्थानिक संस्थायें काम भी अधिक करती हैं और राज्य की अपेक्षा धन भी बहुत खर्च करती है परन्तु वे राज्य की बनाई हुई संस्थायें ही हुआ करती है और राज्य के आधीन ही रहा करती हैं परन्तु प्राचीन भारत की पंचायतें स्वतन्त्र और वशों के जीवन और सगठन प्रवाह उनकी अवस्थाओं के प्रभाव से बना करते थे।[1]

(६) इन्हीं स्वतन्त्र पंचायतों और संघों से, क्योंकि इनका सम्बन्ध केन्द्रीय राज्य से हुआ करता था, इस देश में एक वार इतना बड़ा साम्राज्य बना था, जो इस समय की बृटिश इण्डिया से बड़ा था और जिसका विस्तार अफगानिस्तान से मैसूर तक था।[2]

(७) यह समझना भूल है कि प्राचीन भारत जंगल ही जंगल था। यह वह भूमि थी जिसमें बहुतायत से कृषि होती थी। अनेक प्रकार के अन्न पैदा होते थे। व्यापार बहुतायत के साथ होता था, अनेक प्रकार के कला और कौशल के काम जारी थे। सुभीते के साथ एक से दूसरी जगह पहुंचने के लिये सड़कें थीं और व्यापार-पथ व्यापार के लिये बने हुए थे जिनके किनारे थोड़े-थोड़े अन्तर से कुछ धर्मशालायें थीं और सायेदार वृक्ष और फल देने वाले पेड़ लगे हुए थे। अब भी अनेक जगह हिन्दू आबादी में ये सब बातें मौजूद हैं। अनेक जगह शहर आबाद थे।[3]

---

1. Local Govt in Ancient India P. 6 7
2. Do P. 7
3. Do P. 8

(८) सिकन्दर की चढ़ाई के प्रसंग में ग्रन्थ-लेखकों ने लिखा है कि २००० शहर तो केवल पंजाब ही में थे।[1]

(९) यहां तक कि मुसलमानी राज्यकाल में, जो अत्यन्त अशांति-अस्थिरता का युग था, भारत के लिए वह भी प्राकृतिक मानसिक और आचारिक उन्नति का समय था। मुसलमान राजाओं का शासन राजधानी अथवा बड़े-बड़े शहरों तक सीमित था। असल में इस समय को मुसलमानी काल कहना सर्वथा घटनाओं के विरुद्ध है इसलिए कि वह समय भी हिन्दुओं का उन्नत और पुरुषार्थ काल था। हिन्दू संस्कृति, उस काल में भी अपना विस्तार करती रही जिसका प्रमाण अनेक बौद्धिक और धार्मिक फलती और फूलती संस्थाओं का उस समय प्रचलित होना है। ८वीं सदी में कुमारिल वेद का प्रचारक था, ९ वीं सदी में शंकराचार्य हुए, इस समय संस्कृत के अनेक ग्रन्थ लिखे गए। ७३० ई० में कन्नौज के राजा यशोवर्मन के यहां भवभूति और ललितादित्य जैसे संस्कृत के विद्वान् थे। ९५० ई० में पद्मगुप्त और माघ, ११५० ई० में नैषध के रचयिता श्री हर्ष हुए जो जयचन्द्र [कन्नौज] के दरबारी थे। ८५० ई० में विहार में भट्ट नारायण और ९०० ई० में राजशेखर और ११०० ई० में कन्नौज में जयदेव हुए। १२०० ई० में काश्मीर में सोमदेव, क्षेमेन्द्र और विल्हण और राजतरङ्गिणी के लेखक कल्हण हुए। दक्षिण हिन्दुस्तान में वास्त [लिंगायत] रामानुज और माधव संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् हुए। इसी समय

---

(1) Local Government in Ancient India by R. K. Mukarji P. S.

विजयनगर राज्य उन्नत हुआ। इसी समय कबीर के गुरु रामानन्द काशी में हुये।[1]

(१०) बगाल के नवाब नासिरशाह ने (१२८२-१३२५ ई०) महाभारत का बंगला अनुवाद कराया। विद्यापति ने अनुवाद किया था। कीर्तिवास ने सायण के ग्रन्थों का बगला में अनुवाद किया। हुसैन शाह ने मलधरवसु से भागवत का बंगला अनुवाद कराया। श्री वल्लभ और चैतन्य ने १५ वीं सदी में अपने-अपने सम्प्रदाय का प्रचार किया।

(११) जब तैमूर देहली में मार काट करा रहा था उसी समय बगाल में कुल्लूक भट मनुस्मृति की संस्कृत टीका लिख रहा था।

(१२) बिहार में १२ वीं सदी में विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरा लिखी।

(१३) सिखगुरु नानक, रामदास, तुकाराम और शिवाजी ने इसी बीच (सोलहवी और सतरहवी शती) में अपना-अपना कार्य किया।

(१४) फ्रेजर (Frazer) ने एक जगह ठीक लिखा है कि जो लोग पश्चिमी दृष्टिकोण से, इस देश की नाप तोल किया करते है वे बहुधा भूल जाते हैं कि उपर्युक्त धार्मिक प्रोत्साहन में कितनी महान् शक्ति निहित थी।[2]

(१५) इस प्रकार, सामाजिक आत्म-शासन में, हिन्दूसंस्कृति को पूर्णतया अवसर मिला कि आत्म रक्षा करते हुए आत्म-शक्ति भी करती रहे।

---

(1) Local Govt in Ancient India P. 11—16.

(2) The Literary History of India by Frazer.

(१६) प्राचीन भारत में ये स्थानिक राज्य [पंचायत] इस प्रकार से बना करते थे जिससे सभी का उसमें प्रतिनिधित्व हो सके और सभी जरूरतें भी पूरी हो सकें :—

१ – परिवारों के मुखिया एकत्र होकर नियम बनाया करते थे कि जीवन का समय विभाग क्या हो और वह किस प्रकार पूरा किया जाय ?

२ — वर्णों के मुखिया शासन किया करते थे।

३ – काम चलाने के लिये तीन संघ [Guild] हुआ करते थे :—

[१] व्यापार संघ [Trade Guild], [२] वाणिज्य संघ [Merchant Guild]. [३] शिल्प संघ [Craft Guild]।

(१७ इन स्थानिक राज्य संघों [पचायतों के लिये] निम्न शब्द प्रयुक्त हुआ करते थे : — १. कुल, २. गण, ३. जाति, ४ पूगा, ५. वराट, ६. श्रेणी, ७ सघ. ८. नैगम, ९. समूह, १० सम्भूय समुत्थान।

वैदिक तथा संस्कृत साहित्य में उपर्युक्त नाम पाये जाते हैं।[1]

(१८) नारद स्मृति में, किसी भी कला सीखने वाले के लिये [Apprentice ship for any art] नियम अंकित हैं। अपरेन्टिस पुत्र के समान माना जाता था।[2]

[१९] जाति पर पेशे निर्भर नहीं होते थे। प्रत्येक प्रकार की लेबर का ग्राम होता था।

(२०) ग्राम पंचायत के निर्णयों का अपील नगर की

---

१. Local Govt. in Ancient India by R K. Mukarjee P, 29-50.

2. Do P. 50 & 56.

पंचायतों में हुआ करता था और नगर की पंचायतों के राजा के यहां। राजा का निर्णय अन्तिम माना जाता था।[1]

(२१) ये पचायतें, अन्यों के सिवा, निम्न कार्य आवश्यक रीति से करती थीं :—

१. वर्तमान म्यूनिसिपैलटियों के काम, २. आबपाशी, ३. नहर और तालावों का बनवाना, ४. आज कल का पबलिक वर्क्स, ५. भूमि का बन्दोबस्त, ६ सिक्के जारी करना, ७. शिक्षा का प्रबन्ध, ८. चिकित्सा का प्रबन्ध।

(२२) एक व्यापार संघ [*Corporation of Merchants*] में १५०० व्यापारी शरीक थे।

(२३) सीमैन [बड़ी नदियों और समुद्रों में जहाज चलाने वालों] का संघ भी इसी प्रकार की पंचायत के अधीन काम करता था।

(२४) मदरास की एक शिला लेखों [Epigraphy] की रिपोर्ट, जो १९१८ में तय्यार की गई थी और भोज पत्र के लेख [Inscription] स० ३३३ सन् १९१७ ई० से प्रकट है कि सन् १०३ ई० में, एक कालिज राजा चतुर्वेदी के दान से, दक्षिण की एक ग्राम पंचायत ने स्थापित किया था जिसमें वैदिक ग्रन्थों का अध्ययन कराया जाता था और निम्न विषयों के अध्ययन करने वाले ३४० विद्यार्थी उसमें शिक्षा पाते थे, उनके रहने और भोजन का प्रबन्ध उसी पंचायत की ओर से था : —

---

१. Local Govt. in Ancient India p 133.

विषय	विद्यार्थियों की संख्या	विषय	विद्यार्थियों की संख्या
१. ऋग्वेद	७५	७. बौद्धायन गण, कल्प, गृह्यसूत्र	१०
२. यजुर्वेद	७५	८. रूपावतार	४०
३ छान्दोग्य-साम	२०	९ व्याकरण	२५
४. तलवकार साम	२०	१०. प्रभाकर	३५
५. वाजसनेय संहिता	२०	११. वेदान्त	१०
६. अथर्ववेद	१०		

(२५) इन पंचायतों में सम्मति टिकट द्वारा [Vote by ballot] ली जाया करती थी।

उपर्युक्त प्राचीन राज्यव्यवस्था पर दृष्टिपात करने से, यह बात, उत्तम रीति से प्रत्येक व्यक्ति जान सकता है। कितनी सुन्दर व्यवस्था है कि प्रत्येक ग्राम और नगर अपने अपने कार्यों के लिये पूर्ण स्वतन्त्र थे।[1] यदि यह व्यवस्था आज देश में प्रचलित होती तो न बंगाल का अकाल पड़ने पाता न उससे १५ लाख के करीब स्त्री, पुरुष और बच्चे काल का ग्रास बनते और न बिहार के उत्तरी भाग में रोगों से ८ लाख के करीब मनुष्य मरने पाते। इस व्यवस्था का यहां केवल दिग्दर्शन कराया गया है। अनेक तफसील की बातें छोड़ दी गई हैं। वर्गवादी जिस समाज-निर्माण का आदर्श दुनिया के सामने रखते है उससे कहीं बेहतर यह समाज था जिसकी ऊपर चर्चा की गई है।

सोवियत रूस की विषमता

सोवियत रूस में, यह कहा जा चुका है कि उन व्यक्तियों की आय में भी विषमता और विभिन्नता है जो अपने को वर्गवादी

1. Local Govt. in Ancient India p 279 & 280.

कहते हैं। इस विभिन्नता का स्वाभाविक परिणाम यह निकलता है कि उनके रहन-सहन के पैमाने में भी विभिन्नता हो। जो समूह अपने सदस्यों के रहन-सहन आदि में ऐक्य नहीं पैदा कर सका उसके लिये यह कहना कि वह जगत् से विषमता को दूर कर देगा, ख्यालीपुलाव ही है।[1]

२— कथन मात्र के लिए ट्रस्ट उनके कारखानों को चलाते हैं परन्तु वे ट्रस्ट असल में सोवियत राज्य के ही अंग हैं। इस दृष्टि से देखा जावे तो इस वर्गवादी सोवियत रूस और पूंजीपतियों के कृत्यों में कुछ भी नहीं या नाम मात्र का भेद निकलेगा।[2]

३—उपनिवेशों को अपने अधिकार में रखने की दृढ नीति और साम्राज्यवाद की अप्रकाशमय कल्पना, जैसी ब्रिटेन की है आलोचना के लिये बहुत थोड़ी गुञ्जाइश रहने देती है और पार्लियामेण्ट के नियन्त्रण को भी ढीला कर देती है।[3] सोवियत रूस भी इस महायुद्ध [१९३९-४५] के बाद कुछ इसी प्रकार की नीति का अवलम्ब ले रहा है और वह नीति वर्गवाद के लिये घातक है।

४—ट्रोट्सकी ने एक जगह लिखा है कि "यह बात हमे याद रखनी चाहिए कि प्रजातन्त्रीय संस्थाओं के अधिकारों को कम करने के खर्चे से समस्त शक्ति कुछ एक इने-गिन

---

1. The Great offensive by M. Hindus p. 280.

2. Twelve studies in Russia F. W. Pathick Lawrence p 51 & 52

3. The way to prevent war by Sir Noimal Angal prof H. Laski.

व्यक्तियों के हाथ में लाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है'।[1] ट्रौट्सकी का यह कथन बहुत सचाई रखता है। उदाहरण के लिये इंग्लैंड की पार्लियामेंट को देखो, वह आजकल कुछ एक देश प्रबन्धकों के हाथ की कटपुतली बनी हुई है या फ्रांस और अमरीका की वैधानिक सभाओं को देखो, उनका प्रबन्ध विभाग से झगड़ा रहा करता है, और इसलिये वे किसी प्रभावोत्पादक नीति के काम में लाने में असमर्थ सी रही हैं। यह फ्रांस और अमरीका की विशेषता सही परन्तु सोवियत रूसमें तो इस समय निश्चित रीति से प्रजा का शासन नहीं है। चाहे यह कहो कि शासनाधिकार कुछ एक व्यक्तियों के हाथ में है या यह कहो कि स्टैलिन की "डिक्टेटर शिप" से समस्त देश शासित हो रहा है। दोनों बातें एक दर्जे तक ठीक है। परन्तु प्रत्येक दशा में वर्गवाद का रूस में खात्मा हो रहा है।

५ - जिन देशों में प्रजातन्त्रीय राज्यव्यवस्था का ढंढोरा पीटा जाता है वहां भी वास्तव में निर्वाचन कुछ एक व्यक्तियों के ही हाथ में रहा करता है। हम यहां दो देशों के उदाहरण देते हैं। पहले इंग्लैंड को लीजिये । यहां जब पार्लियामेंट के सदस्यों के निर्वाचन का समय आता है तो 'कोंकस"(Caucus) नाम की संस्था निश्चयकर देती है कि किसको निर्वाचन करना चाहिए। उसके बाद मतदाता उसी का अनुकरण करते है और उसी को निर्वाचित किया करते हैं यह "कौकस" संस्था मुट्ठी भर आदमियों का समुदाय होती है।

२—इसके बाद अमेरीका निर्वाचन पद्धति पर दृष्टिपात

---

(1) Ancient and Modern Scientific Socialism by Dr. Bhagwan Dass P. 40

कीजिये। वहां "बोस" (Boss) नाम की एक संस्था है। अमरीका में यह संस्था वही काम करती है जो इंग्लैण्ड में कौकस किया करती है। अमेरीका का प्रेजीडेन्ट जनता द्वारा नही निर्वाचित हुआ करता, जनता का काम केवल इतना होता है कि दो में से किसी एक को चुन लेवे। उन दो का नियत करना जनता के हाथ में नहीं है। दोनों पार्टियों को संगठित करने वाले कुछ एक व्यक्तियों के हाथ में उनका नियत करना हुआ करता है। बहुधा मतदाता प्रभावशाली व्यक्ति नही हुआ करते। इनसे बहतर डिप्टी (पार्लियामेंट के मेम्बर) हुआ करते हैं। संक्षेपतः यह बात कही जा सकती है कि प्रतिनिधि राज्यमें अधिक मनोरंजक उसका "व्यवच्छेदशास्त्र" (Anatomy) नहीं अपितु "रोगनिदानशास्त्र" (Pathology) है।[1] सोवियत रूस में तो निर्वाचन व्यवस्था इतनी भी परिपक्व नहीं जितनी उपर्युक्त देशों में है। इसलिए इस वर्गवादी प्रजातन्त्रीय राज्य को तो जहां तक प्रजाके प्रतिनिधित्व का सम्बन्ध है, अमेरीका आदि देशों से दूसरे तीसरे दर्जे ही पर मानने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। परन्तु वर्ण आश्रम राज्य व्यवस्था में प्रत्येक वर्ण (Guild) अपने प्रतिनिधियों को चुनते हैं और वे ही प्रतिनिधि राजसभा का निर्माण करते है और वही राज्य सभा फिर राजा(प्रधान को चुन लिया करती है। इससे साफ जाहिर है कि इस वर्ण आश्रमवाले राज्य में उपर्युक्त देशों की अपेक्षा प्रजा का अधिक और साक्षात् प्रतिनिधित्व है।

६—वर्गवाद का यत्न यह है कि अमीर, गरीब, पूञ्जीपति,

---

(1) Communism by Prof H, Laski P. 135 and 136

श्रमजीवी, मजदूरी के वेचने और खरीद करने आदि के सभी भेद दूर कर श्रेणी रहित समाज बना दिया जावे।[1] परन्तु इस वाद के प्रचारक इस बात को नहीं सोचते कि भिन्न-भिन्न व्यवसाय करने वालों की भी तो पृथक्-पृथक् श्रेणियां बन जाया करती हैं, उन्हें किस प्रकार दूर किया जा सकता है वर्ण व्यवस्था के रूप से इसी प्रकार की व्यवसाय सम्बन्धी श्रेणियां बना करती हैं। फ्रांस, जर्मनी और इंग्लैण्ड आदि देशों के विद्वानों ने इस भेद को अनिवार्य समझा है। मार्क्स ने श्रेणीरहित समाज बनाने का दावीदार होने पर भी इन भेदों को स्वीकार किया है। उसने एक जगह लिखा है कि उनके कमाने के व्यवसायों से उनका विभाजन किया जावे।[2] वर्ण व्यवस्था भी तो यही है। वर्णों के भेद व्यवसाय के अनुसार ही हुआ करते हैं जिनसे अपनी जीविका वे उपलब्ध करते हैं।

७—मार्क्स ने फिर एक जगह लिखा है कि इस दृष्टिकोण से वर्तमान मनुष्य समाज दो बड़े भागों में विभक्त होने योग्य है। (१) पूंजीपति, (२) मजदूर[3] मार्क्स का यह कथन पश्चिमी समाज के अनुरूप है जैसा कि काब्ब ने लिखा है।[4] परन्तु श्रेणी तो एक प्रकार की रही, श्रेणी रहित समाज तो न हुआ। समाज

---

(1) Communism by Prof Laski ch: IX

(2) "The Scientifically valid Method of classifying men is by the way they earn their living" (Cited by Laski p. 62-68)

(3) Cited by Laski P. 68.

(4) Europe to-day by Cob. P. 694-695.

में श्रणियों का होना वास्तव में बुरा नहीं, होना यह चाहिये कि उनमें सहयोग हो। वर्ण व्यवस्था के रू से जो श्रेणियां बनती हैं उनकी विशेषता यही है कि वे मिलकर और बांट कर काम करती हैं जैसा कि कहा जा चुका है।

समाज और राज्य

वर्ण और आश्रम व्यवस्था चलाने के लिये, बल प्रयोजक और नियन्ता के रूप में मनु ने राज्य और राज्यान्तर्गत विद्या सभा आदि को माना है। प्राचीन काल में राज्य के प्राय: तीन भेद स्वीकार किये जाते थे:—(१) एकप्रभुक (Monarchical) (२) प्रजातन्त्रीय (Republic), (३) अल्प अनाधिपत्य (Oligarchical) इन तीनों में से प्रत्येक का काम यही था कि आश्रम और वर्ण व्यवस्था के नियमों को प्रचलित करे, श्री जयचन्द्र लिखित एक ग्रन्थ में एक उदाहरण मिलता है कि किस प्रकार आश्रम व्यवस्था बलपूर्वक प्रचलित की जाया करती थी। राजा के पुरोहितों का यह कर्त्तव्य होता था कि वे देखाकरें कि प्रत्येक व्यक्ति आश्रम की मर्यादा का ठीक रीति से पालन करता है एक जगह लिखा था कि यदि भूठे साधु जिनका नाम "कहुक तापस" कहा गया है, गेरूये कपड़े पहन कर मुफ्तखोरी करने लगेंगे तो समस्त जम्बू द्वीप को वे ठगी से नष्ट कर देंगे। इसलिये पुरोहित राज्याज्ञा लेकर ऐसे भूठे संन्यासियों को, संन्यास से लौटा कर ढ़ाल तलवार देकर सैनिक बना दिया करता था।[1] अस्तु उपर्युक्त राज्य के विवरणों को देते हुए श्रीयुत जायसवाल ने एक जगह लिखा है कि यहां कभी-कभी दो राजे भी होते थे

१—भारतीय इतिहास की रूपरेखा जिल्द १ पृ०३३८

जिन्हें "डायर की (Diarchy)" शब्द से आज पुकारा जाता है और जो प्रथा स्पार्टा में, नियमपूर्वक प्रचलित थी।[1] जो कुछ इसी से मिलती जुलती प्रथा आज नेपाल के हिन्दू राज्य में भी प्रचलित है।

हीगल और राज्य-व्यवस्था

वर्गवादी और फासिस्ट दोनों जर्मनी दार्शनिक हीगल (Hegal) को अपना दार्शनिक पूर्व पुरुष मानते हैं। हीगल के दर्शन का एक भाग यह था कि "मानव समाज के संगठन की अन्तिम पूर्ति जातीयराज्य (National State) बना देने से हो जाती है।[2] हीगल का कहना है पृथक्-पृथक् व्यक्तियों के समुदाय का नाम जनता (People) नहीं है जो कृत्रिम रीति से, पारस्परिक लाभार्थ, जान बूझकर इकट्ठे हुये हैं। बल्कि जनता उसे कहते हैं कि जो आध्यात्मिक मेल से संगठित हुई है जिससे और जिसके लिये उसके व्यक्ति अपनी सत्ता रखते हैं। इसीलिये बरनस का कहना है कि फैसिस्ट संभूय कारिन राज्य (Corporate state) को मानते हुये व्यक्तियों को राज्य के आधीन ठहराते हैं और उन्हें राज्य का एक अंग मानते हैं।[4] क्रमश: उन्नति का तार्किक विचार वह हीगल के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता की कार्य प्रणाली मात्र है।[5] जिस प्रकार हीगल ईसाईपन को समाप्त करना चाहता था उसी प्रकार मार्क्स पूंजीपतियों को नष्ट करने की इच्छा रखता था।[6]

1—Hindus polity by K. jayaswal.
2—Grammar of Politics by Laski P. 222.
3—Fascism by Major Burnes P. 37.
4— Do. P. 84-85.
5—Communism by Laski P. 57.
6— Do. P. 57-58.

२– मार्क्सवाद में "क्षत्रियाधिपत्यवाद (Feudalism) जिस का अभिप्राय भूमि को फौजियों के अधिकार में रखना है,मध्यम श्रेणी राज्य और वह राज्य प्रथा जो कुछ एक देश के श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा समष्टि रूप से संचालित होती है और जिसे महाजन राज्य प्रथा (Squirearchy) कहते हैं तथा जनसाधारण वर्गवाद राज्य अथवा सम्पत्ति वालों में से मध्यम श्रेणी वालों के राज्य को स्वीकार करने से, समाप्त हो गया और ये अन्तिम वर्णित राज्य भी, मार्क्स के मतानुसार अन्त में समाप्त हो जावेंगे ।[१]

३—पुरोहित राज्य (Sacerdotalism) जो आरम्भ में था, ऐसा कहा जाता है और जिसे इस देश की प्राचीन पद्धति के अनुसार ब्राह्मण राज्य (Hagiarchy ईश्वरराज्य या Theocracy ईश्वर प्रभुत्ववाद) कहते हैं । क्षत्रिय राज्य (Feudalism या Militarism या Timocracy राज्य का एक प्रकार जिसमें पदाधिकारी बनने के लिये आवश्यक होता है कि वह एक विशेष परिमाण में सम्पत्ति रक्खे) से बदला गया । इसके बाद वैश्य राज्य (Capitalism Plutocracy) धनवत्सत्तात्मक राज्य की वारी आई उसके बाद अन्त में शूद्र राज्य (Democracy, Mobocracy अप्रबुद्ध जनगण, अथवा Proletarianism या labourism या Dictatorship of the proletariat)आया । इतिहास गवाही देता है कि योरुप में ऐसा ही राज्य है । परन्तु इस का अभिप्राय यह नहीं कि बाकी तीन वर्णों की उस राज्य में कुछ आवाज नहीं है । अस्तु । इस देश की प्राचीन पद्धति में, उपर्युक्त चार विभाग ही मनुष्य समुदाय के किये गये हैं । और

यह कहने की जगह कि ये चारों वर्ण असन्धेय (Irreconcilable) है।[1] यह कहना चाहिये कि मनोवैज्ञानिक ढंग से इन चारों वर्णों का होना अनिवार्य है और आश्रम तथा वर्ण की मर्यादाओं के अनुसार उनमें मेल रहना अनिवार्य है क्योंकि वे अन्योन्याश्रित हैं। फैसिस्ट राज्य को[2] अथवा वर्गवादी राज्य को[3] जिस का लेनिन ने विवरण दिया है, पुलिस राज्य कह सकते हैं परन्तु वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुकूल जो राज्य बने उसे कदापि पुलिस राज्य नहीं कह सकते।

आश्रम और वर्णव्यवस्था का समर्थन

जान रसकिन ने अपने एक प्रसिद्ध ग्रन्थ (Untotheast) में लिखा है कि पांच बुद्धिविषयक बड़े पेशे हैं जिनका सम्बन्ध मनुष्यों की दैनिक आवश्यकताओं से है और जो प्रायः सभी सभ्य देशों में प्रचलित पाये जाते हैं।

१—सिपाही (क्षत्रिय) का पेशा देश की रक्षा करना है।
२—गुरु (Pastor) का काम शिक्षा देना है।
३ वैद्य का काम देश को स्वस्थ रखना है।
४—वकील का काम न्याय की स्थापना करना है।

1—Communism by Laski P. 129

2—Enc. Brit. article Fascism by L. Villari "All within the state. nothing outside the state. nothing after the state."

3—Humanity uprooted by M. Hindus P. 64.
"The whole of Society will become one office and one Factory (Lenin)

५—व्यापारी का काम देश की आवश्यकताओं को पूरा करना है। रसकिन की सम्मति है कि आवश्यक समय आने पर इनमें से प्रत्येक को अपना कर्त्तव्य पालन करते हुए अपने प्राण तक दे देने चाहिए,क्योकि जिस आदमी को यह ज्ञान नहीं कि किस प्रकार मरना चाहिये, वह यह भी नहीं जान सकता कि मनुष्य को किस प्रकार जीना चाहिए।[1]

इनमें से पहला पेशा क्षत्रिय का है और २ से ४ तक ब्राह्मण के पेशे हैं, पांचवां वैश्य का है। शूद्र वर्ण का रसकिन ने यहां इसलिये उल्लेख नहीं किया कि उसे बुद्धि विषयक पेशों ही की चर्चा करनी थी। शूद्र का पेशा बुद्धिविषयक नहीं, अपितु शरीर विषयक है।

(२) एक और विद्वान् रोबेक ने चार आश्रमों का उल्लेख इस प्रकार किया है:—(१) गृहस्थ (The altruonomic),(२) ब्रह्मचर्य (The theoretical) (३) वानप्रस्थ (The artistic) और (४) संन्यस्थ (The religious) रोबे का कथन है कि मनुष्य की सामाजिक प्रकृति होने की दृष्टि से इनमें दो की और वृद्धि होनी चाहिये:—(१) सामाजिक प्रेम का बल(Loue of social Power), (२) राजनैतिक=बल का प्रेम (Love of Poritical Power)[2] परन्तु ये अन्तिम दोनों तो उपर्युक्त चार आश्रमवालों के कर्त्तव्य की कोटि में आ जाते है। इनकी पृथक् गिन्ती करने की जरूरत

1—Love cit P. 37 and 38

2—The Psychology of character by Dr. A. A. Roback.

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र शब्द प्रयुक्त होते हैं इसलिये डाक्टर भगवानदास की सम्मति है कि ब्राह्मण आदि की जगह वर्णों के कुछ और नाम रख लिये जावें जिससे वर्णों का जन्म की पचलित जातियों से भेद बना रहे। उन्होंने कुछ एक नाम चारों वर्णों के दिये हैं, उनका हम यहां जनता की ज्ञान वृद्धि के लिये उल्लेख करते हैं।

१—ब्राह्मण के लिये: (१) शिक्षक, (२) ज्ञानदाता, (३) विद्वान्, (४) वर्चस्वी, (६) तपस्वी।

२—क्षत्रिय के लिये:—(१) रक्षक, (२) त्राणदाता,(३)वीर, (४) शुष्मी, [शक्तिमान] (५) तेजस्वी, (६) सहस्वी।

३—वैश्य के लिए:—(१) पोषक,(२) अन्नदाता (३)दानी, (४) व्यापारी, (५) महस्वी, (६) ओजस्वी।

४—शूद्र के लिए:—(१) सहायक, (२) सहायदाता, (३) सेवी, (४) श्रमी, (५) तरस्वी, (६) दमस्वी।[1]

७—इटली की आबादी ४० मिलियन अर्थात् ४ करोड़ है परन्तु उनमें फैसिस्ट केवल १० लाख हैं इसी प्रकार रूस की आबादी १६० मिलियन अर्थात् १६ करोड़ है परन्तु उसमे वर्ग वादी केवल तीस लाख हैं।[2]

८—पूंजीपतियों का साम्राज्य प्राय: न बदलने वाले अनियन्त्रित शासकों से भरा हुआ होता है। वे निर्दयता करने में परिपक्व होतेहैं और जनता पर आतंक रखते हुए उनकी संपत्ति

1—Ancient V. Modern Socialism by Dr. Bhagawan Dass P. 165.

2— Do p. 142.

का हरण करते रहते हैं।[1] इंग्लैंड आदि इसी प्रकार के राज्य हैं, इनका विश्व भावना वाद से कोई लगाव नहीं।

६—कलहकारी (The Bully) अनियन्त्रित शासक अपनी रक्षा के लिए इनको रक्खा करते है। इस देश में सी. आई. डी. इसी प्रकार के व्यक्तियों का सम्प्रदाय है। रूस में इस सी. आई. डी. को पहले चेका (The Cheka) कहा करते थे। परन्तु अब उन्हें जी पी. यू. (G. P. U) कहने लगे है।[2] ये आमतौर से निर्बलों को सताया करते हैं और बलवानों से डरा करते है। इस मामले में रूस और इग्लैण्ड में कोई अन्तर नही है।

वैदिक राज्य और एक विशेषता

वैदिक राज्य की एक विशेषता है कि इसमें प्रजा को नागरिकता के साधारण अधिकारों के सिवा जीवन निर्वाह अधिकार (Right of living) प्राप्त होता है। ऋग्वेद में एक जगह अंकित है कि "(राजसंचालक) विद्वान् भूख से (किसी को) नहीं मरने देते, अधिक खाने वाले को (भले ही) मरने के अवसर प्राप्त होते रहते हैं। निश्चित रीति से पोषक का धन नष्ट नहीं होता"।[3] मतलब साफ जाहिर है कि भूख से किसी को नही मरना चाहिए अधिक खाकर भले ही कोई मर जावे।

---

1 —Ancient V. Modern Socialism by Dr. Bhagawan Dass P. 144.

2— Do p. 144.

३—न वा उ देवा: क्षुधमिद्वधं ददुः। उताशितमुपगच्छन्ति मृत्यवः। उतोरयिः पृणतो नोपदस्यत्युता पृणन्मर्डितारं न विन्दते। (ऋग्वेद १०-११७-८)

जो लोग भूख को दूर करने में सहायता देते हैं वे सुखी रहते हैं परन्तु इस कर्त्तव्य का न पालन करने वाले सुखी नही रह सकते। यदि इस देश में वैदिक राज्य पद्धति प्रचलित होती तो बगाल में लाखों आदमी भूख से न मरने पाते। इस प्रसंगमें हम सोवियत रूस की इतनी प्रशंसा कर सकते हैं कि इंग्लैंड आदि के विपरीत वहां बेकारों की सख्या का प्रायः अभाव हैं।

सोलहवां अध्याय
"समाजवाद की एक शाखा"
Guild Socialism

समाजवाद की एक शाखा

गिल्ड समाजवाद, समाजवाद की शाखा है जो २०वीं सदी की दूसरी शताब्दी में इंग्लैंड में मुख्यता को प्राप्त हुई। उसके बाद जगत् के दूसरे भागों में भी उसका फैलाव हुआ।[1] यह वाद "व्यावसायिक स्वराज्य" है। प्रजातन्त्रीय नियमों का व्यावसायिक और राजनैतिक विषयों में लागू करना इस वाद का उद्देश्य है। जाति के आर्थिक जीवन को व्यावहारिक आधार पर संगठित करना भी इसके उद्देश्य में शामिल है। व्यावहारिक आधार इस वाद का यह होगा कि समस्त जाति का, देश के व्यवसायों पर आधिपत्य हो और हाथ तथा मस्तिष्क से काम करने वाले श्रमजीवियों के हाथ में उसका प्रबन्ध हो और

1—Guild—An association of men belonging to the same data" formed for mutual aid and Protection.

Enc. Brit. Article Guild socialism by G. D. H. Cob P. 588.

इन श्रमजीवियों का सम्बन्ध गिल्ड से हो। गिल्ड वालों का विश्वास है कि जब तक विस्तृत और महत्वपूर्ण साधारण नियम आर्थिक अवस्थासे लागू न किये जावेंगे तब तक स्वराज्य भी वास्तविक न होगा। वास्तविक स्वराज्य तो व्यावहारिक ही हो सकता है। मनुष्य के दैनिक कार्य की अवस्था, आवश्यक रीति से उसकी प्रवृत्ति और स्थिति पर, एक नागरिक की हैसियत से अपना प्रभाव डालेगी। आर्थिक व्यवस्था मनुष्यों में जो सबसे अधिक अच्छापन है यदि उसे कार्यार्थ बाहर न निकाल सकी तो समझना चाहिए कि वह अपना काम पूरा नहीं कर सकी। जीवन के प्रत्येक विभाग से यदि धन की लोलुपता के कारण, मनुष्य ने शिक्षा, धर्म, वैधानिक नियम और सात्विक व्यवहार और चिकित्सा को खो दिया तो अनेक प्रकार के रोग आदि से मनुष्य धन भी नहीं पैदा कर सकेगा। गिल्ड समाजवादियों को चाहिए कि वे समाजवादियों को समझावें कि साक्षात् राज्य के अन्तर्गत जो व्यवसाय है अथवा जो व्यवसाय अनियन्त्रित शासन मर्यादा से किए जाते हैं उनको न सहयोग देवें न उन का विश्वास करें।[1]

एक दूसरी दृष्टि

टेलर का कहना है कि एक उन्मादपूर्ण किवदन्ती, अनेक श्रेष्ठ पुरुषों और राजनैतिक क्लबों में फैली हुई है कि उन्नति (Progress) शब्द का भाव किसी नई वस्तु का खोज कर लेना है। परन्तु सचाई यह है कि अनेक सूरतों में, उन्नति का अभि-

---

1 Guild through world chaos by G. D. H. Cob P. 585 95

प्राय किन्हीं पुरानी बातों पर लौटना ही होता है।'[1] सर्वांश में तो नहीं परन्तु अनेक अंशों में यह बात ठीक ही प्रतीत होती है।

कानूनों की अधिकता

अनियन्त्रित शासनों को दृढ़ करने के लिए अनियन्त्रित शासक कानूनों ही का आश्रय लिया करते हैं। यहां हम एक दो उदाहरण देते हैं:—(१) इंग्लैंड की पार्लियामेंट ने १९१९ से १९३० तक १२ वर्ष के भीतर ७५० कानून बनाए थे जिनके छपे हुए पृष्ठों की संख्या ८००० थी।

२—इसी १२ वर्ष के भीतर संयुक्त राज्य अमरीका के अनेक राज्यों ने ६० हजार कानून बनाये थे। इतने कानून बनाने वालों ने एक नियम यह बना रक्खा है कि कानून की अनभिज्ञता कोई उज्र नहीं है।" इस सम्बन्ध में एक मनोरंजक घटना है। एक हाईकोर्ट की 'रिपोर्ट' में एक जज का लेख अंकित है कि "इस वैधानिक नियम की ओर एडवोकेट जनरल ने मेरा ध्यान नहीं दिलाया।" प्रश्न यह है कि क्या इस जज के लिए (Ignorance of the law is no excuse) यह नियम लागू नहीं था।[2]

वर्तमान कथित प्रजातन्त्रीय राज्य का अभिमान

टेलर ने एक जगह लिखा है कि मनुष्यों की समाप्त न होने वाली स्मृति ही का नाम परम्परा है। उसका विचार था कि कई सूरतों में पीछे लौटने ही का नाम उन्नति है जैसा ऊपर कहा गया है। जो लोग आज के राज्य के प्रकारों को अच्छा

---

2 — The Guild state by G. R. S. Taylor. P. 1.

2 — The Guild state by G. R. S. Taylor P 15.

बतलाकर बीते काल की निन्दा किया करते है उनके लिये टेलर ने एक बड़ी कठोर बात लिखी है। वह कहता है आज कल का इश्तहारबाजी के द्वारा ढोल पीटने का तरीका, एक सीमा तक सफल हो रहा है। इसी इश्तहारबाजी द्वारा कहा जाता है कि वर्तमान शासन अधिक प्रजातन्त्रीय नियमों पर चल रहा है उस की अपेक्षा जो मध्यकालीन युग मे था। टेलर की दृष्टि में यह आश्चर्यजनक दावा इतिहास की बड़ी से बड़ी शेखी है।[1]

२—अपने ग्रन्थ के प्रारम्भिक अध्याय में जिसका शीर्षक "गिल्ड सिस्टम का ऐतिहासिक आधार" है, समाप्त करते हुये टेलर ने लिखा हैं:—' उन कारणों ने, जो अत्यन्त केन्द्रीयकरण तथा राजा और सिनेट के मध्य आन्तरिक शक्ति प्राप्ति के लिये कलह उत्पन्न कर रहे थे, रोम के साम्राज्य को नष्ट भ्रष्ट कर दिया"। "रोम इसीलिये बरबाद हुआ कि उसका राज्य, ससार में सबसे अधिक कठोर था"। उसकी बरबादी के कारण वे जंगली और असभ्य जातियां हुई जो यह भी नहीं जानती थी कि राज्य क्या हुआ करता है। परन्तु सचाई यह है कि टयूटन (Teutons) जातियों द्वारा, रोम बरबाद नही हुआ। उसकी बरबादीके असलीकारण उसके शासक और अनियन्त्रित शासकी हुये थे। इन्ही कारणों से ब्रिटिश साम्राज्य भी बरबाद होगा।[2]

गिल्ड प्रथा के तीन बुनियादी नियम

मुख्य तीन नियम हैं, जिनके आधार पर "गिल्ड सिस्टम" स्थापित हुआ था:—(१) सर्वसाधारण के सामाजिक जीवन संगठन का मुख्य आधार व्यवहार व्यवसाय तथा व्यापार की

1. The Guild state by G. R. S. Taylor P. 26-29.
2. Do p. 34 and 35

श्रेणी बद्धता होनी चाहिये, (२) गिल्ड का स्वप्रबन्धित (Self Managed) होना आवश्यक है। (३) गिल्ड को वर्तमान समाज की उस प्रवृत्ति से, जो अत्यन्त केन्द्रीयकरण से सम्बन्धित है, बचना चाहिये।[1]

गिल्ड के संगठन का पहला मुख्य नियम

गिल्ड के अन्तर्गत जितने संगठन हों, उनकी सामाजिक बनावट व्यवसाय विभाजन के आधार से होनी चाहिये। नागरिक अपने-अपने व्यापार या पेशों की बुनियाद के साथ संगठित होने चाहिएं, भूमि या क्षेत्रविशेष के आधार से नहीं। इस प्रकार का सगठन निम्न रूपों में अब भी मौजूद है जैसे:— (१) चाय की खेती के हिस्सेदार, (२) रूई के व्यवसाय से सम्बन्धित व्यापार संघ, (३) अध्यापक समुदाय, (४) डाक्टरों की समिति तथा(५ कानूनी पेशा करने वालों का संघ इत्यादि। स्पष्ट है कि उपयुक्त विभाग पेशे के आधार ही पर किये गये हैं। आज की निर्वाचन पद्धति का आधार क्षेत्र अर्थात् नगर वा ग्रामों का एक भाग होता है, जहां के मतदाता किसी को निर्वाचित किया करते हैं। परन्तु गिल्ड प्रथा में व्यवसायों की भिन्नता उसके किसी ग्रुप के निर्माण के साधक हुआ करते हैं।

गिल्ड सिस्टम और वर्णव्यवस्था

वर्ण भी पेशों के आधार से बनते हैं और गिल्ड की बनावट के आधार भी पेशे होते हैं। इसलिये मौलिक आधार गिल्ड और वर्ण का एक ही है। और यह समता प्रकट करती है कि गिल्ड प्रथा के संचालक, वर्तमान क्षेत्र के आधार के साथ

1. The Guild State by G. R. S. Taylor p. 91.

निर्वाचन पद्धति की अपेक्षा, वर्ण के आधार व्यवसाय या पेशों को, अपने गिल्डों या संघों के बनाने के लिये अधिक उपयोगी समझते हैं।

इंग्लैण्ड के राज संगठन के दोष

इंग्लैण्ड में दो पार्लियामेंट हैं। एक को 'हाउस आफ लार्ड्स' कहते हैं। इसके सदस्य अधिकतर पादरी या अमीर और धनी हुआ करते हैं। यह संगठन अत्यन्त त्रुटिपूर्ण है और इसमें अधिकतर अयोग्य पुरुष ही आया करते है जिन्हें किसी अवस्था में भी शिक्षित और कार्यकुशल पुरुष या उनका प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता। (२) दूसरे को हाऊस आफ कामन्स-सर्व-साधारण का संघ कहते हैं। इसमें अधिकतर कारोबारी आदमी या मजदूर श्रेणी के व्यक्ति आया करते हैं। इसे भी त्रुटिरहित वा योग्य पुरुषों का संगठन नहीं कह सकते है।[1] इसकी अपेक्षा वर्ण-आश्रम-राज्य सभी श्रेणियों का सम्मिलित और प्रतिनिधि-राज्य हुआ करता है। उस राज्य प्रणाली की अपेक्षा इंग्लैंड की राज्य प्रणाली किसी गिनती में आने योग्य नहीं है।

गिल्ड का दूसरा नियम

दूसरा नियम यह है कि गिल्डको अपना प्रबन्ध स्वयं करना चाहिए। इस स्वप्रबन्ध-प्रथा से सूखी हड्डियों में जान आ जाया करती हैं, इससे अच्छा और कोई ढंग आत्मशासन का नहीं है। इस संगठन में व्यापार कुशल, धनी, कुलीन और चिकित्सक आदि सभी आ जाते हैं।[2]

1. The Guild state by G. R. S. Taylor p. 175&176.
2. Do. p. 56 and 64.

गिल्ड का तीसरा नियम

गिल्ड को अनुत्थानयोग्य (Unwieldy) नहीं होना चाहिये जितना व्यापार आदि पेशों के प्रतिनिधित्व के लिये आवश्यक है उससे अधिक विस्तृत उसे नहीं होना चाहिये।[1] एक उत्तम शिक्षित समाज का कर्त्तव्य यह होना चाहिये कि जितना संभव हो राज्य से अधिकार लेकर उन्हें अपने कब्जे में करे। राज्याधिकार बढ़ाना तो पाप ही समझना चाहिये क्योंकि अधिक से अधिक सभ्य वही समझा जाता है जिसे पुलिस से कुछ हिदायतें न लेनी पड़ें। गिल्ड का अन्तिम ध्येय स्वयं स्टेट बन जाना ही होना चाहिये और वह इस प्रकार कि राज्यसंस्था का निर्माण गिल्ड के प्रतिनिधियों से होने लगे।[2] जिसका अर्थ यह है कि वर्णों के प्रतिनिधियों से राज्य संस्था का निर्माण होना चाहिए। हमने इस गिल्ड सिस्टम का जो उल्लेख यहां किया है वह केवल इस उद्देश्य से कि जिससे वर्तमान भारतीय शिक्षित समाज समझ ले कि जिस वर्ण आश्रम की संस्था के सम्पर्क में, [illegible] यह कतरा रहा है किस प्रकार दुनिया का दूसरा शिक्षित समाज उन्हीं के अपनाने को अग्रसर हो रहा है। हम अब इस प्रकरण को समाप्त करने से पहले कुछ उपयोग [illegible] रसल के एक निबन्ध का ओर कर देना उपयोगी [illegible] लेखक ने यह निबन्ध गिल्ड प्रणाली के समर्थन में लिखा [illegible]

1. The Guild state by G. R. [illegible] Taylor P. [illegible]
2. Do. P. 166 and 128,

स्वतन्त्रता के मार्ग

बरट्रेंड रसल ने लिखा है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के चार मार्ग हैं:—(१) (स्टेट) सोशलिज्म (राजकीय समाजवाद) (२) (दार्शनिक) क्रान्तिकारी,(३)राजविरोधी समाजवाद (Syndicalism) और (४) गिल्डवाद। इन वादों के सम्बन्ध में रसल महोदय ने अपनी सम्मति इस प्रकार दी है: "शुद्धक्रान्तिवाद यद्यपि अन्तिम ध्येय यही होना चाहिए और समझना चाहिए कि यह वाद जिस पूर्ति के लिए समाज बना है, इस समय उस का कार्यान्वित होना, असम्भव और यदि प्रारम्भ भी किया गया तो एक वर्ष से अधिक समय तक बाकी नहीं रह सकेगा। (२) मार्क्सवाद राज्य को अत्यधिक अधिकार देता है। (३) राजविरोधी समाजवाद जिसका उद्देश्य राज्य को समाप्त कर देना है, मेरी सम्मति में, विवश होगा कि पुन: एक केन्द्रीय शासन प्रथा को, इसलिए प्रचलित करे कि उसके द्वारा विरोध करने वाले उत्पत्ति के साधक समूह को नष्ट करे। (४) सर्वश्रेष्ठ काम में आ सकने योग्य "गिल्ड प्रथा" है जो राजकीय समाजवाद में जो कुछ अच्छा है उसे भी स्वीकार करता है और राजविरोधी समाजवाद के भय को भी जो उसे राज्य से है, मानता है। और इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उसने समस्त गिल्डों का एक प्रतिनिधि संघ बनाना स्वीकार कर रक्खा है इस सघ के बनाने के हेतु वे ही हो सकते हैं जो भिन्न-भिन्न जातियों के प्रतिनिधि संघ बनाने के हुआ करते हैं।[1] (२) जो वर्गवादी यह समझे बैठे हैं कि वर्गवादी राज्य के शासक उन्हीं को होना चाहिए। जो आज उसकी वकालत कर रहे हैं,

1 Roads to Freedom by Bertrand Russall P. 12&13.

वे स्वार्थी और साकांक्ष प्रबन्धकों के ढंग के व्यक्ति हुआ करते हैं। ऐसे व्यक्ति जब शासक बन जाते हैं तो वे न विरोध सहन कर सकते हैं न स्वतन्त्रता के प्रेमी हुआ करते हैं।[1]

(३) गिल्ड प्रथा वालों को कुछएक लोग सीमा का उल्लंघन करने वाला समझते हैं परन्तु यह उनकी भूल है। गिल्ड वाले असल में राजीनामा-प्रिय होते हैं। उनके विरुद्ध मार्क्स एक ओर आज के वर्गवादियों की तरह राज्य को बहुत अधिकार देने का नाम नहीं लेता है और दूसरी ओर कहता है कि वर्गवादी क्रान्ति पूरी हो जायेगी तो राज्य स्वयमेव नष्ट हो जावेगा असल में मार्क्स विचार राज्य के सम्बन्ध में स्पष्ट नहीं है। यह तो साफ जाहिर है कि राज्य सदा के लिये नष्ट नहीं हो सकता। अपराधियों को दण्ड देने के लिये, उसका होना अनिवार्य है।[2]

(४)मस्तिष्क को अच्छा बनाने और अधिक से अधिक देने योग्य करनेके लिये ३ बातों की जरूरत है-(१)कलाका अभ्यास, (२) स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि उत्पन्न प्रवृत्ति को काम में ला सके और (३) जनता में ऐसी शक्ति होनी चाहिए कि उपर्युक्त कार्यों के कार्यकर्ताओं को साधुवाद दें जिससे उनकी उत्साह-वृद्धि हो। इनकी पूर्ति करने में वर्गवाद तो असफल हुआ परन्तु गिल्ड प्रथा सम्भव है कि सफल हो सके, इसलिये कि पूंजीवाद के सम्बन्ध में अधिक से अधिक सुलझा विचार गिल्ड प्रथा और इस पथ के पथिकों का ही है।[3]

---

(1) Road to Freedom by Bertrand Russel P. 116.

(2) Do. P. 123 to 136.

(3) Do. P. 168 to 186.

उपसंहार

अब हम इस ग्रन्थ को कुछ एक शब्दों के साथ समाप्त करना चाहते हैं। इस ग्रन्थ में प्राचीन काल में प्रचलित वर्ण और आश्रमों का उल्लेख करते हुए उस समय की राज्य पद्धतियों का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का विवरण देते हुए वर्तमान राज्य पद्धति की भी यथास्थान चर्चा की गई है, जिससे पाठकों को नवीन और प्राचीन दोनों प्रकार की पद्धतियों का ज्ञान होकर दोनों की तुलना करने का अवसर प्राप्त हो सके। तुलना करने से ही वस्तुओं के गुण और दोष मालूम हुआ करते हैं। हमने भी तुलना करते हुए अनेक जगह अपनी सम्मति भी दी है। उस सम्मति को, आशा की जाती है कि पाठक ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे तभी उनको नवीन और प्राचीन पद्धतियों के गुण और दोष मालूम हो सकेंगे। गुण दोष की जानकारी होने पर ही अपने ग्रहण करने के लिये मार्ग का भी निश्चय हो जाया करता है। यदि इन पृष्ठों के अवलोकन से कुछ एक स्वाध्यायशील पाठक अपने लिये शुद्ध मार्ग छांट सकेंगे तो अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

॥ इति ॥